प्रेम पत्र
94
H86
M26P
Hindi

लेखक का निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक के पत्र उस समय लिखे गये थे जब लेखक स्वतन्त्रता आन्दोलन से आगरा केन्द्रीय बन्दी गृह में बन्द था। उस समय यह पत्र एक विशेष आवश्यकता की पूर्ति के लिये लिखे गये थे परन्तु लेखक का यह विश्वास है कि आज की परिस्थिति में यह पुस्तक हमारे देश के नवयुवक और नवयुवतियों की अनेक समस्यायें सुलझाने और उनके जीवन के अन्धकार में एक नया प्रकाश देने में समर्थ होगी। यदि ऐसा हुआ तो लेखक अपने श्रम को सफल समझेगा।

इस पुस्तक को जो भी सज्जन पढ़ें उनसे आग्रह है कि यदि उन्हें इसमें कोई विशेषता दिखलाई पड़े तो वे इसे कुछ युवकों को अवश्य भेंट करें अथवा पढ़ने के लिए दें।

६, महात्मा गांधी रोड, आगरा — देवकीनन्दन विभव

ता० ८-५-५४, — एम० एल० ए०

विषय सूची

———

हमारा आदर्श उच्च और महान् होना चाहिए

प्यारे बेटे,

आज जब मैं एक लम्बे समय के लिये जेल के इन सीकचों में बन्द हूँ, तब मुझे एक ही चिंता है कि तुम्हें उचित मार्ग-प्रदर्शन मिले। तुम अपने जीवन के उस काल में से गुजर रहे हो, जब समय समय पर तुम्हें मार्ग प्रदर्शन की अत्यन्त आवश्यकता है। अगर तुम्हें उचित मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिली, कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर तुमने अपना जीवन बनाने का प्रयत्न किया तो मुझे विश्वास है कि तुम देश के एक सफल नागरिक बन सकोगे। लेकिन इसके विपरीत अगर तुम्हारा मार्ग प्रदर्शन सामयिक और उचित न हुआ तो खतरा है कि आगे भविष्य में जो गत्यावरोध पैदा हों, उनमें तुम भटक जाओ और सही रास्ता तुमसे छूट जाय। अनेक बार तुम्हें बहुत से मार्ग बड़े आकर्षक और सुन्दर प्रतीत होंगे, परन्तु यह सम्भव हो सकता है कि उनके द्वारा तुम जीवन में साफल्य की झलक न देख सको। क्योंकि प्रत्येक वस्तु जो चमकती है सोना नहीं होती। इसलिए मैं तुम्हें सावधान कर देना चाहता हूं कि अपना भावी कार्यक्रम उचित रूप से सोच कर निश्चय करो और तुमसे बड़े जो तुम्हें सलाह दें उनकी अवहेलना करने की चेष्टा न करो।

मैं सोचता हूं कि यदि मैं इससमय तुम्हारे पास पहुँचकर तुम्हारी मदद नहीं कर सकता तब भी मैं समय-समय पर तुम्हारी समस्याओं पर सोच सकता हूं और पत्रों द्वारा तुम्हें अपना दृष्टिकोण बता सकता हूं। इस तरह के पत्र लिखने से मेरा भी समुचित मनोरञ्जन होगा। आज जब मैं तुम्हारे सम्बन्ध में सोच रहा हूं और यह पंक्तियां लिख रहा हूं, तो मुझे ऐसा लगता है मानो तुम मेरे पास बैठे हो। बे मौसम बरसात हो रही है और पानी की टप टप मेरा ध्यान जंगलों के बाहर आकृष्ट करती है, हवा में भी कुछ सीलन है और मैं सोच रहा हूं कि आखिर हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है ?

हम जिस जीवन यात्रा पर निकले हैं, क्या वह सर्वथा लक्ष्यहीन है ? क्या हमारे जीवन का लक्ष्य यही है कि कि हम पैदा हों, जीवन की दैनिक समस्याओं से संघर्ष करते हुए बड़े हों और फिर एक दिन उस अनन्त नींद में सो जायें जिससे फिर कोई नहीं उटता। विलासी जीवन बनाने, दूसरों पर रौब जमाने के लिये शान-शौकत की चीजें एकत्रित करने में ही क्या हमारे जीवन का लक्ष्य छिपा है ? निसन्देह जीवन का लक्ष्य इससे कहीं अधिक ऊँचा और महान है, विस्तृत और असीम।

हमारे जीवन का लक्ष्य महान् और उच्च होना चाहिये। तुमको यह विश्वास होना चाहिये कि ईश्वर ने तुम्हें महान् और उच्च कार्य करने के लिये इस संसार में भेजा है। ससार में जितने उच्च एवम महान् व्यक्ति हुए हैं, उनमें ऐसी कोई विशेष बात नहीं थी, जिसे तुम प्राप्त न कर सकते हो। संसार के अधिकांश महापुरुष अति साधारण परिस्थिति में उत्पन्न हुए हैं। विश्वविजयी अलक्षेन्द्र, नैपोलियन, चन्द्रगुप्त, महाराज रणजीतसिंह, हिन्दू पति शिवाजी, जार्ज वाशिगटन सब साधारण परिस्थितियों में उत्पन्न हुए थे। इटली का

मुसोलिनी एक लुहार के यहां पैदा हुआ था, हिटलर जिसने, एक बार समस्त विश्व को अपनी शक्ति से हिला दिया एक साधारण सिपाही था और आधुनिक टर्की का निर्माता मुस्तफा कमाल पाशा जिसने तुर्क जाति को रूढ़िवादिता और धार्मिक कट्टरता के बन्धन से निकाल कर स्वतन्त्र विचार पोषित करने की शक्ति दी, साधारण परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ था। अमरीका के धन कुबेर कारनेगी और फोर्ड निर्धन माता पिताओं के यहां उत्पन्न हुए। चीन में प्रजातन्त्र शासन के जन्मदाता डाक्टर सनयातसेन और उसकी रक्षा के लिए जापान तक से टक्कर लेने वाले चांगकाईशेक सब प्रारम्भ में साधारण मनुष्य थे।

आज हमारे देश के भी अनेक धनी परिवार बिड़ला, डालमियां, बालचंद हीराचन्द आदि कुछ समय पहिले साधारण व्यक्ति थे। दादाभाई नौरोजी बहुत गरीब माता पिता के यहां पैदा हुए थे। लीडर के यशस्वी सम्पादक और एकबार युक्त प्रान्त के शिक्षा-सचिव श्री चिन्तामणि को युवावस्था में कोई सहायता प्राप्त नहीं थी।

आज विश्व के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति महात्मा गान्धी यद्यपि विलायत से बैरिस्टरी पास करके आये थे परन्तु उनकी सफलता का यही कारण नहीं था। आज भी हमारे देश में क्या अनगिनती बैरिस्टर नहीं हैं, जिन्हें कोई महान कार्य करना तो दूर रहा जो अपने जीवन के निर्वाह के लिये समुचित साधनों को जुटा सकने में भी असमर्थ हुए हैं। भारतवर्ष में स्वयं महात्मा जी अपनी वकालत के पेशे में असफल रहे।

तुमने लन्दन के उस मेयर की कहानी तो सुनी होगी जो अपनी युवावस्था में बेकारी की फटी हालत में लन्दन के एक पार्क में सोने आया। वह निराश्रय था, जीवन की निम्नतम आवश्यकताओं

की पूर्ति करने में भी वह असफल रहा। वहां उसे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि गिर्जे के घंटे की आवाज़ उससे यह कह रही है "टन....टन ....वैलिंगटन लार्ड मेयर आफ लन्दन।" यही वैलिंगटन आगे चल कर लन्दन का मेयर हुआ। आज दुनिया के सफल सम्पादक कभी सड़कों पर अखबार बेचने वाले लड़के थे। अनेक मिल मालिक कभी मिलों में छोटे नौकर थे। अनेक वैज्ञानिक कभी होटलों में तश्तरियाँ साफ करते थे, और अनेक धनी अपने घर से लोटा डोर लेकर किस्मत आज़माने निकले थे।

विश्व के अनेक विद्वान ऐसे हैं जिन्हें अपने शिक्षाकाल में पुस्तकें तक प्राप्त करने के साधन उपलब्ध नहीं थे। अब्राहम लिंकन, अमेरिका का महान राष्ट्रपति, जिनकी मृत्यु पर कहा गया था--"दुनियां में अब तक जितने पैदा हुए हैं, उनमें मनुष्यों का सबसे अधिक पूर्ण शासक यह पड़ा है", एक बिसायतखाने की दुकान पर नौकर था। उसने ५० सेन्ट में एक कबाड़िए की दूकान से कानून की पुस्तकें खरीदीं। अपनी लगन और अमिट उत्साह से वह एक दिन अमेरिका का प्रेसीडेन्ट बना।

मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि महान मनुष्य अपनी परिस्थिति का स्वयं निर्माण करते हैं, परिस्थितियां उन्हें नहीं बनातीं। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन की अच्छी परिस्थितियां मनुष्य के ऊचे उठने मैं सहायक होती हैं लेकिन वह बाधक भी बन जाती हैं। यदि अनुकूल परिस्थिति ही मानव को ऊँचा उठाने में सहायक हों तो ससार में जितने महान व्यक्ति हुए हैं उनकी सन्तानें ऐसी ही महान और उच्च होती। पर हम साधारणतया इसके विपरीत पाते हैं। अपने देश में ही देख लो कितने महान व्यक्तियों की सन्तान भी महान हुई। इसलिए एक युवक को यदि वह

अनुकूल परिस्थिति में उत्पन्न हुआ है तो उसका उचित उपयोग करना चाहिए और यदि प्रतिकूल परिस्थति में हुआ है तो उससे निरुत्साहित नहीं होना चाहिए।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक युवक को अपने जीवन को महान और उच्च बनाना चाहिए परन्तु महानता केवल अधिक सत्ता या धन प्राप्त करने में नहीं हैं। क्या हम केवल प्रसिद्ध सेनापति अलक्षेन्द्र और नेपोलियन या धनकुवेर फोर्ड और बिड़ला को ही सफल कह सकते हैं? अन्य को नहीं जो इतनी शक्ति या धन संग्रह करने में असमर्थ रहे। नहीं, शक्ति और धन सग्रह ही जीवन की महानता के मापदण्ड नहीं हैं। अनेक ऐसे महान पुरुष हुए हैं जिन्होंने शक्ति या धन संग्रह नहीं किया, उन्हें जीवन की जटिल परिस्थितियों में संघर्ष करना पड़ा परन्तु वे मानवता और संसार के लिए इतना अमूल्य ज्ञान और आविष्कारों की सम्पत्ति छोड़ गए हैं जिससे उनके जीवन की महानता विश्व के इतिहास में अमर होकर चमकती रहेगी। ध्रुव जैसी अटल और स्थिर। इसलिए जब तुम अपना लक्ष्य निर्धारित करो तो यह आवश्यक नही है कि तुम बहुत अधिक शक्ति संग्रह या सम्पत्ति की बात ही सोचो। तुम एक धनी, या राजनीतिज्ञ न होकर भी महान बन सकते हो। दीनबन्धु एन्ड्रूज धनी नहीं थे, न किसी राजनीतिक दल के नेता परन्तु फिर भी उनकी महानता किसी प्रधान मन्त्री या धनी से कम नहीं। आज कल के प्रचार और प्रकाशन के युग में 'धन और शक्ति' महानता का ढिंढोरा पीट सकती है और उच्चता का सेहरा पहना सकती है। परन्तु यह क्रम अधिक नही चल सकता। महान तो वही रहेंगे जो मानवता और ससार के लिए वस्तुतः कोई उपयोगी कार्य करेंगे।

वास्तव में जीवन में जो सर्वोपयोगी वस्तु है वह न खरीदी जा सकती और न बेची। एक कहावत है "एक आदमी की वास्तविक सम्पत्ति यह है कि वह संसार का कितना भला करता है" (A man's true wealth is the good he does in this world) जब उसकी मृत्यु होगी तो इस धरती के आदमी पूछ सकते हैं कि उसने अपने पीछे क्या छोड़ा? परन्तु देवता उससे यही पूछेंगे "तुमने अपने पूर्व क्या अच्छे कर्म यहाँ भेजे हैं।"

वास्तव में यह ठीक भी है। जीवन का लक्ष्य ऊंचा होना चाहिए क्योंकि हमारे शास्त्रों में कहा है—

गुणि गणगणनादम्भे न पतति कठिनी संसभ्रया यस्त्र
तेनाम्भा यदिस्ततनी बद बन्ध्या हर्णी भवति ?

(जिस माता की संतान की गणना श्रेष्ठ व्यक्तियों की गणना में प्रथम न हो तो यदि उस माता के पुत्र है तो फिर बांझ कौन है ?' धन कमाना स्वतः बुरा नहीं है, यदि वह उचित साधनों से हो और उसका उचित उपयोग किया जाय, क्योंकि धन की आकांक्षा के कारण ही हम व्यापार में इतनी आश्चर्यजनक प्रगति पाते हैं। इस प्रकार के विचार ने हमें दूसरे देशों के उत्पादन और वहाँ की स्थिति में दिलचस्पी लेना सिखाया है, यहाँ तक कि हमारे दृष्टि-कोण में सहिष्णुता पैदा करके हमें दूसरे के साथ मिल कर काम करना सिखाया। किसी लेखक ने लिखा है :—

"This passion for money has supplied an outlet for energy which would otherwise have been put up and wasted, have accustomed men to habits of enterprise, forethought and calculation, have moreover, communica-

ted to us many parts of great utility, and have put us in possession of some of the most valuable remedies with which we are acquainted, either to save life or lessen pain. These things we owe to the money. If theologians could succeed in their desire to destroy that love, all things would cease, and we should relapse into comparative barbarism."

लेकिन हमें यह भी समझना है कि हमारे जीवन का लक्ष्य केवल सोने की पासें नहीं होना चाहिए। जीवन में और भी बहुत से प्रेरक तत्व ऐसे है जो हमारे जीवन को सफलता की ओर ले जा सकते हैं। यदि किसी को इंजीनियर बनना है तो फिर उसे एक श्रेष्ठ इञ्जीनियर बनना है बजाय इसके कि वह अपनी शक्ति केवल किसी प्रकार धन एकत्रित करने में लगाये। इसी प्रकार एक व्यापारी का लक्ष्य यह नहीं होना चाहिए कि वह किसी प्रकार अपना माल बेचकर सोने के टुकड़े इकट्ठे करे वरन जरूरत इस बात की है कि वह अपने माल की विशेषता और अधिक बढ़ाये। वैज्ञानिक, लेखक, सम्पादक सभी के साथ यह नियम लागू होता है।

परन्तु ऐसा कहने से मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि हमें वस्तु स्थिति से दूर केवल आकांक्षाओं के स्वप्निल संसार में घूमते रहना चाहिए। हमारी कल्पना कितनी ही विस्तृत क्यों न हो परन्तु हमारे पैर पृथ्वी से प्रथक नहीं होने चाहिए. हमें परिस्थितियों को भूलना नहीं चाहिए, नहीं तो हम औंधे मूँह गिरेंगे। ऊंचा लक्ष्य होते हुए भी, हम जिस हालत में हैं उसका हमें पूरा ज्ञान

होना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि महान बनने के लिए हमें उन परिस्थितियों से संघर्ष करना है। उस गत्यावरोध को उन्मूलित करके ही हम प्रगति के प्रशस्त मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं।

परिस्थिति होती है जब हम इन बाधाओं को हटाने में असफल होते हैं, जब हमारे सामने निराशामय संसार होता है, उस समय अगर हमने सोचा कि "रात दिन प्रयत्न किया, सफलता के लिए जूझा, संघर्ष किया। मैंने कोई प्रयत्न नहीं छोड़ा जिससे मैं अपने लक्ष्य में विफल होता। इस पर भी मेरे भाग्य में असफलता लिखी थी। फिर किसलिए यह संघर्ष, किसलिए यह कशमकश ?" जहाँ ऐसी भावना ने हमारे ऊपर अधिकार किया हम निस्पन्द और निश्चेष्ट होकर निराशा के पंजे में जकड़ते जायेंगे। प्रगति और विकास की समस्त आशा धूल में मिल जायगी। कल्पना के किले की दीवारें गिर जायेंगी। इसलिए हमें परिस्थिति से घबराना नहीं है। हमारा तो यह निश्चित विचार होना चाहिए कि "मैं ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति हूं, अगर मैं ही इनसे डर गया तो क्या इसमें उस परमपिता की हीनता न होगी। समस्यायों पर विजय पाना ही तो मानवता है।"

जहाँ तुमने ऐसी भावना को जन्म दिया, वहाँ तुम्हारा हृदय एक नव आशा और स्फूर्ति से भर उठेगा। तुम अपने जीवन में अमिट उत्साह और लगन संचार करने में सफल होगे और स्थिति हो सकती है कि जब तुम प्रगति के मार्ग पर काफी आगे बढ़ सको। मैं यह नहीं कहता कि तुम ऐसी प्रवृति को हमेशा जन्म दे सकते हो। परन्तु जब भी तुम इस प्रकार की भावना पैदा कर सके, तुम समुचित प्रगति कर सकोगे।

सम्भव है कभी कभी धीर और वीर मनुष्य भी परिस्थिति से असन्तुष्ट हों लेकिन यह निश्चय है कि कोई मनुष्य संसार से असंतुष्ट नहीं रहा जिसने अपने कर्तव्य की पूर्ति की। यह संसार तो एक शीशे के समान है, अगर तुम इसे हँसते हुए देखते हो तो यह भी हँसता है और अगर तुम रोते झींकते हो तो यह भी रोता झींकता है। अगर तुम उसे एक लाल शीशे से देखते हो तो उसका रंग भी लाल हो जाता है। इसलिए सदैव प्रत्येक परिस्थति को आशावादी दृष्टि से देखो। लार्ड एडबरी ने एक स्थान पर लिखा था कि "कुछ आदमी ऐसे होते हैं कि जिनकी मुस्कराहट, उनकी बोली की आवाज, यहाँ तक कि उनकी मौज दगी एक चमकीली आशा किरण जैसी प्रतीत होती है जो कमरे को जाज्वल्यमान कर देती है।" क्या तुम अपने को ऐसा बनाने का प्रयत्न न करोगे।

और फिर यह भी सम्भव हो कि तुम असफल रहे लेकिन तुमने अपने कर्तव्य की अवश्य पूर्ति की और तुम्हारे लिए यह भी संतोष की एक वस्तु हो सकती है। सन्तेप में—

(१) तुम अपना लक्ष्य ऊंचा बनाओ

(२) उस ऊंचे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए छोटा कार्य करने से न हिचको।

(३) केवल कल्पना के संसार में विचरने का प्रयत्न न करो।

(४) असफल होने पर निराश न होकर पुनः प्रयत्न करो।

यह देखो नम्बरदार मुझे खाना खाने के लिए बुला रहा है, और मैं चला।

तुम्हारा पिता

———

भावी जीवन की योजना

[२]

प्यारे बेटे,

आज जब कि मैं यह पत्र तुम्हें लिखने को बैठा हूँ तो रात्रि के अंधेरे की चादर को चीर कर प्रकाश की छुटपुट रेखायें अपना मार्ग बनाने के लिए कशमकश कर रही है परन्तु देखो यह संघर्ष कैसा चुपचुप हो रहा है, नीरवता अब तक चारों ओर छाई हुई है, केवल 'ताला जंगला ठीक है साहब' की आवाज सुनाई देती है, या फिर पास में ही रेल की सीटी की आवाज दिल में गुड़गुदी पैदा करके निकल जाती है। यहां से स्टेशन बहुत नजदीक है और सुबह होने से पूर्व ही रेलगाड़ियों के आने जाने की काफी हलचल सुनाई पड़ती है। तुम जानते हो कि जब मैं बाहर था, कमसे कम एक मास में एक हजार मील तो रेल में सफर करना पड़ ही जाता था परन्तु आज तो बीस महीने से रोज रेलगाड़ी की सीटी का अह्वान तो सुनता ही हूँ, परन्तु यह सन्देश केवल मेरे मस्तिष्क में एक विचित्र भावना को उत्पन्न कर व्यर्थ ही निकल जाता है। मेरा शरीर इस जेल की चहार दीवारी में ही बन्द है, हाँ मेरे ख्यालात जरूर हजारों नहीं लाखों की मील की उड़ान लेते रहते हैं।

हाँ ! तो अब हमें अपने विषय पर आ जाना चाहिए। मैंने तुम्हें अपने पूर्व पत्र में बतलाया था कि प्रत्येक युवक को जीवन में अपने को महान और ऊंचा उठाने का निश्चय कर लेना

चाहिए परन्तु महत्वाकांक्षा के पोषित करने से ही कोई मनुष्य महान नहीं बन सकता। शेखचिल्ली की तरह बड़ी बड़ी बाते सोचने अथवा कल्पना करने से ही कोई ऊंचा नहीं उठ सकता संसार में जादू की कोई ऐसी लकड़ी नहीं है, जिसके छूते ही मनुष्य में बड़प्पन और ऊंचाई आ जाय। संसार में जितने मनुष्य हुए हैं उन्होंने अपने जीवन में प्रत्येक कदम पर परिस्थितियों से युद्ध करके अपने को ऊंचा उठाया है। मनुष्य पग पग पर अपने को ऊंचा उठाये तभी वह महान बन सकता है। यदि कोई युवक अपनी दिमागी कसरत से ख्याली दुनियां में अपने को महान समझ बैठे और अपनी वास्तविक हालत पर विचार न करे तो उसकी दुनिया तो शेखचिल्ली की दुनियां ही बन जांयगी।

ऊंचा उठने के लिए जीवन में योजना की बहुत आवश्यकता है। आज का युग इतना आगे बढ़ गया है और मानवीय सम्बन्ध इतने जटिल होगये हैं कि बिना एक निश्चित योजना और कार्यक्रम के हम जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। जिस तरह एक ग्रह बिना किसी नकशे और योजना के प्रारम्भ कर दिया तो यह निश्चय है कि वह बहुत ही कुरूप, असुविधापूर्ण और भोंड़ा बनेगा। उसमें रुपया भी अधिक लग जाता है। इसी प्रकार जीवन भी बिना योजना के परस्पर भावनाओं के संघर्षों का ढेर मात्र बन जाता है। उसमें अत्यधिक श्रम और प्रयत्न होने पर भी किसी व्यवस्था का निर्माण नहीं होता, ऊबड़खाबड़ जमीन पर उल्टी सीधी रक्खी हुई ईंटों का ढेरमात्र। एक सुन्दर मकान के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसकी एक रूप रेखा पहले ही से निर्मित करली जाय। कौन सी चीज कहाँ होगी, बाग कहाँ बनेगा? मुख्य द्वार कौन सा होगा? पढ़ने का स्थान कहाँ रहेगा? बच्चे कहाँ खेलेंगे। भोजनघर किधर होगा? उसका धूआँ तो सारे मकान

में नहीं भर जायगा। गरमियों में सोने की कहाँ व्यवस्था होगी ? बरसात में पानी निकल जाने का क्या प्रबन्ध होगा ? आदि। जिस तरह एक साधारण मकान के बनाने के लिए एक योजना और प्लान की अत्यन्त आवश्यकता है, उसी तरह जीवन का सुन्दर भवन भी बिना किसी योजना के तय्यार नहीं हो सकता। जीवन का निर्माण साधारण घर के बनाने से अधिक कठिन है और जिस तरह एक घर की योजना बनाने में अनुभवी इन्जीनियर की सलाह और पथ प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। उसी तरह जीवन की योजना बनाने और उसके निर्माण करने में अपने से बड़े अनुभवी व्यक्तियों के अनुभव और विचारों से भी लाभ उठाने की जरूरत है। किसी ने कहा है कि महान व्यक्तियों के पद-चिन्हों पर चलकर ही हम भी महान बन सकते हैं। मैं मानता हूं कि प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकतायें प्रथक होती हैं और उसकी रुचि भी भिन्न भिन्न होती है। जिस तरह मनुष्यों की आवश्यकताओं और रुचि का ध्यान रखते हुए इन्जीनियर के अनुभव से मकान बनना चाहिए, उसी तरह प्रत्येक युवक की प्रवृत्तियां तथा इच्छाओं को ध्यान में रखते हुए अपने से बड़े अनुभवी व्यक्तियों के परामर्श से जीवन के निर्माण की योजना बननी चाहिए।

मुझे अत्यन्त खेद है कि बहुत ही थोड़े लोग अपने जीवन में किसी योजना से काम लेते हैं। वास्तव में उनका जीवन एक परस्पर विरोधी बातों का ढेर मात्र है, उनकी शक्तियां आपस में ही टकरा कर नष्ट होजाती हैं। हम इसका एक नमूना अपने युवकों की शिक्षा में ही लेते है। उनकी शिक्षा किसी योजना के आधार पर नहीं होती थी इस पर किसी ने ध्यान पूर्वक सोचा भी नहीं है। जो चीज जब सामने आ गई और योंही बिना सोचे हमारे जीवन

में प्रवेश पा गई। अनेक युवक जो अच्छे इञ्जीनियर बन सकते थे एल० एल० बी० की कक्षाओं की दीवारों से माथा टकरा रहे हैं और जो अच्छे साहित्यकार बन सकते हैं वे विज्ञान पढ़ने में अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर रहे हैं। जो अच्छे व्यौपारी बन सकते हैं और जो व्योपार और उद्योग-धन्धों की विद्या प्राप्त कर सकते हैं वे बायलोजी (Biology) प्राणि–शास्त्र में अपने को खपा रहे हैं। एक वकील साहेब ने एम० एस सी० प्राणिशास्त्र में किया, कभी फिर एल० एल० बी० पास करके कचहरी की बाररूम की कुर्सी तोड़ने लगे। उनसे प्राणि-शास्त्र के विषय में पूछिये वह कहेंगे मैंने यह विषय पढ़ा जरूर था पर अब मुझे कुछ याद नहीं रहा, अवतो उनका कुछ काम ही नहीं पड़ता।

जीवन में एक धारा होनी चाहिये यानी उसमें परस्पर विरोधी बातों में जीवन की शक्ति और समय का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये। उनके लिये इस बात की आवश्यकता है कि अपने को समुद्र की लहरों पर तैरने वाले उन तख्ते की तरह मत बताओ, जो लक्ष्यहीन कभी इधर कभी उधर घूमता फिरता है पर घूमता उसी छोटे दायरे में है और अन्त में उसी संघर्ष में नष्ट हो जाता है। तुम्हें अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित करना चाहिये, शिक्षा, धन, स्वास्थ्य, सामाजिक कर्तव्य, और अध्यात्म सब के लिये उचित स्थान रखना चाहिये और इस योजना में अपने से अनुभवी बड़े व्यक्तियों की सलाह लेनी चाहिये। उनकी सहायता और परामर्श से एक चतुर नाविक की तरह अपनी जीवन नौका को एक निश्चित लक्ष्य की ओर खेना चाहिये। तुम्हें अपनी इस योजना में समय २ पर परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी परन्तु यदि तुम लक्ष्य को सामने रक्खो तो तुम इधर उधर भटकने से अवश्य बच जाओगे।

अब तुम इस अवस्था में प्रवेश कर रहे हो, जब धीरे धीरे तुम अपने जीवन की योजना बनाने की बात सोच सकते हो। मैं तुम्हारी यथाशक्ति मदद करने को तत्पर हूँ, परन्तु मैं तुम पर अपना कोई फैसला लादना नहीं चाहता। तुम जिन ग़लत रास्तों को पकड़ोगे, मैं तुम्हें उनके खतरों से खबरदार जरूर कर दूँगा पर तुम्हें अपना रास्ता आप तय करना होगा। हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि सोलह वर्ष के बाद लड़का मित्र हो जाता है उसे मित्र की तरह परामर्श देना चाहिये। अब जमाना आज़ादी का है। हालांकि मैं आत्महत्या करने की आज़ादी का क़ायल नहीं हूँ पर जिस युवक ने आत्महत्या करने की ठान ही ली हो, उसे हम जबरदस्ती नहीं रोक सकते। जबरदस्ती करने से तो उसका आत्महत्या करने का हट और भी बढ़ जाता है। हां ? अपनी विचार शक्ति से हम उसकी विचार धारा को बदल सकते हैं। जीवन को ग़लत रास्ते पर डालना आत्म-हत्या ही करना है। इस आत्म-हत्या से प्रत्येक युवक बचना चाहिये।

तुम्हारा पिता

———

जीवन में समतुलन

[३]

प्यारे बेटे !

यहां इस समय कई जिले के करीब सवा सौ नजरबन्दी हैं, इनकी संख्या किसी समय तो ३५० तक पहुच गई। सन् १९४१ में यह संख्या चार सौ साढ़े चार सौ तक थी। उस समय प्रान्त के अधिकांश जिले के राजनैतिक कार्यकर्ता यहां थे। हम लोग महीनों और वर्षों से एक दूसरे के इतने सन्निकट रहे हैं, जितना प्राय: बाहर की दुनियां में दो व्यक्तियों को भी रहने का अवसर कम मिलता है। और मैं तो अब इस प्रकार के जीवन का एक प्रकार से आदी हो गया हूँ। हालांकि यह जीवन एक रेल के स्टेशन के थर्ड क्लास के वेटिंगरूम का सा जीवन है। यहां एक ही जगह पर बहुत से आदमी बेतरकीब से और बिना किसी पर्दे के एक स्थान पर ही भर दिये गये हों। हां ! इस जीवन की एक विशेषता यह है कि उस वेटिङ्ग रूम में तुम्हारी आंखों के सामने से नई-नई चीजें गुजरती हैं पर यहाँ हम महीनों और वर्षो से केवल कुछ इनी गिनी चीजें और एक खास तरह के वातावरण को देखते देखते थक जाते हैं पर फिर भी हमें यहां मनोविज्ञान के अध्ययन करने के काफी मौके मिलते हैं।

हां तो आज मुझे तुम्हें यह बताना है कि जीवन में समतुलन की बड़ी जरूरत है। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है "समत्व योग उच्यते" समत्व को ही योग कहते है; यह समत्व क्या है ? मनुष्य के जीवन में तीन शक्तियां बहुत बड़ा काम करती हैं;

वास्तव में जीवन के ऐञ्जिन के लिये हवा, पानी, और कोयला का काम देतीहै। ये शक्तियां हैं भावना या प्रेरणा (emotions) ज्ञान और कार्य कारिणी शक्ति (action)। गीता में कृष्ण ने इन्हीं को मुक्ति, ज्ञान और कर्म कहा है और इन तीनों के समुच्चय का उपदेश दिया है। तुम्हीं सोचो कि अगर हवा पानी और कोयले में से अगर कोई भी चीज उपस्थित न हो तो क्या वह ऐञ्जिन एक कदम भी आगे बढ़ सकता है। भावनाऐं जीवन की समस्त प्रगति का मूल स्रोत है, ज्ञान अथवा कर्म अकर्म-विवेक उसका मार्ग प्रदर्शन करते हैं, और कर्म वह शक्ति है जो भावनाओं को ज्ञान के प्रदर्शन से ठीक रास्ते पर क्रियात्मक रूप देती है। इन में से एक भी वस्तु न होने से तुम्हारी जीवन यात्रा खतरे से खाली नहीं होसकती। यदि भावनाऐं न हों तो जीवन बिल्कुल नीरस हो जायगा, तुम में आगे बढ़ने की कोई प्रेरणा न होगी, ज्ञान के मार्ग बिना तुम अंधेरे में लड़खड़ा कर गिर पड़ोगे और कर्म के विना यह तीनों चीजों के होने पर भी तुम एक इञ्च हिलोगे ही नहीं। इसलिए जीवन में ऊंचा वही उठ सकते हैं जिनमें इन तीनों को उचित स्थान पर रक्खा गया हो।

जरा हम भारतवर्ष को ही क्यों न लें? गीता में कृष्ण ने भक्ति, ज्ञान और कर्म के समन्वय का उपदेश दिया है परन्तु भारतवर्ष जब इनमें से एक को भी भूला उसे ठोकरें खानी पड़ी। बुद्ध के जन्म के समय में एक अवसर ऐसा आया जब लोग ज्ञान और कर्म को भूल गए और कर्मकाण्ड या अन्धा कर्म ही उनके जीवन का मूल-मन्त्र बन गया। प्रत्येक दिन यज्ञ और धार्मिक क्रियाओं में ही लगे रहते, यज्ञों में पशु और नर बलि दिए जाते, लोग शराब और मांस में मस्त रहते। परिणाम क्या हुआ? समाज की सारी व्यवस्था बिगड़ गई और मनुष्य का जीवन नर्क तुल्य बन गया। परिणाम

हिन्दू-धर्म का अधःपतन और बुद्ध का आगमन शङ्कर। के बाद भारतीय आत्म-अनात्म विषय पर वाद विवाद होते, जीवन का एक मात्र लक्ष्य वही होगया था, लोग शुष्क कर्मवाद में भावनाओं और कर्म को भूल गए। जीवन के संघर्ष को छोड़कर लोग कहते हैं मैं ब्रह्म हूँ 'अ म् ब्रह्मास्मि', परिणाम पुनः वही हुआ, हिन्दू भारत का पतन और मुसलमान शासकों की गुलामी। एक युग फिर आया जब लोग ज्ञान और कर्म को भूल गये और अन्धी भक्तिभावना ही उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य रह गई। बंगाल और दूसरे प्रदेशों में दिन दिन भर राष्ट्र का राष्ट्र पैर में घुंघरू बांध कर और ढोल मञ्जीरे के साथ 'हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण' तो गाते और उसमें अपने को धन्य समझते पर कृष्ण के उपदेश ज्ञान, भक्ति और कर्म के समन्वय की ओर ध्यान नहीं देते थे। परिणाम व्यभिचार, अकर्मण्यता, गरीबी और अँगरेजों की गुलामी।

जो बात एक राष्ट्र के लिए ठीक है, वही एक मनुष्य के लिए भी सही है। प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये प्रेम की भावनाओं, ज्ञान और कर्म के समन्वय की आवश्यकता है। जिस प्रकार एक चित्रकार एक चित्र में प्रत्येक रंग को सुन्दरता से अपने स्थान पर रखता है इसी तरह से प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में आवश्यक चीजें उचित स्थान पर रखने की आवश्यकता है।

शारीरिक विकास और स्वास्थ्य जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है परन्तु यह देखिये पहिलवान जी इन्होंने इसको अपने जीवन में इतना अधिक अपना लिया है कि दूसरी जरूरी चीजें इनके जीवन में बहुत पीछे रह गईं हैं। दिन भर कुश्ती लड़ना और दण्ड बैठक लगाना ही इनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। और यह प्रोफेसर साहब ! यह दुनियां भर की सब

किताबें पेट में हज़म किये बैठे हैं पर फिर भी दिन पर किताबें ही पढ़ते रहते हैं। 'किताबी-कीड़े' हैं पर स्वास्थ्य इनका बिलकुल खस्ता हालत में है। सदा बीमार रहते हैं, इनका पढ़ना सब व्यर्थ ! और यह लाला भी दिन रात चांदी काटने की चिन्ता में रहते हैं, बैङ्क में लाखों रुपया है पर फिर भी लक्ष्मी के पीछे बड़ी बेरहमी से पड़े है। इन्हें दूसरे काम के के लिये एक मिनट की फुरसत नहीं, ज्ञान अथवा स्वास्थ्य से इन्हें कोई वास्ता नहीं। और यह पण्डित जी दिन भर आँखें मूँदे जप करते रहते हैं, दुनियां से इनका छत्तीस में तीन छः का नाता है पर दूसरे के सिर के बोझ बने हैं, इन्हें अमुक लालाजी से खाने, पीने, कपड़े के लिये गिड़गिड़ा कर आत्म-सम्मान बेचना पड़ता है। धन कमाने और कार्य करने को इन्हों ने उचित स्थान नहीं दिया। यह एक बाबू साहब हैं पूरा साहबी ठाठ बाट, भावनाओं और वस्तुस्थिति से दूर जीवन की सामग्रियों और ठाठ बाट को ही सब कुछ समझते हैं, इतनी रंगीनी होने पर भी यह शुष्क काठ पुतलों की तरह हैं।

अपने जीवन में उचित वस्तुओं के उचित स्थान पर रखने के महत्व को भली प्रकार समझ लेना चाहिये। जीवन के भिन्न भिन्न पहलुओं की व्यवस्था के सम्बन्ध में मैं तुम्हें आगे के पन्नों में समय समय पर लिखूंगा। इनसे भी तुम्हें कुछ भी लाभ होगा तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। सम्यक् जीवन ही सफलता की कुञ्जी है।

तुम यहां यह पूंछ सकते हो कि क्या मनुष्य को किसी चीज़ में विशेषता प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है ? अवश्य है। हमें जीवन में कुछ विशेष चीज़ों पर अधिक जोर देना होता है। वास्तव में प्रत्येक जीवन का इस संसार में एक विशेष उद्देश्य होता है परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमें दुनियां की दूसरी चीजों से अपने को बिलकुल पृथक कर लेने की जरूरत

नहीं है। वास्तव में उस विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये भी मनुष्य को भिन्न भिन्न अन्य सहायक वस्तुओं का उपयोग करना आवश्यक होता है। उनका उपयोग करते हुए भी अपने मूल उद्देश्य को नहीं भूलना चाहिये।

तुम्हारा पिता।

— —

जीवन में आशावाद

(५)

प्यारे बेटे,

जीवन की लहरों के संघर्ष के थपेड़े खाते खाते मैं कभी कभी बेचैन हो उठता हूं परन्तु फिर सोचता हूं जीवन के इस भयङ्कर संघर्ष में मुझे कौन जीवित रक्खे हुए है ? जब चारों ओर निराशा का निबिढ़ अंधेरा हमें अपने जीवन में घेर लेता है तब वह कौनसा टिमटिमाता दीपक है जो हमें उस अंधेरे पथ पर ठोकरें खाते हुए भी अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाता है ? यद्यपि हम दीपक की प्रस्फुटित किरणों की एक हलकी सी रेखा ही हैं जो अवसर से संघर्ष करके हमारी ओर बढ़ती हुई दिखाई देती हैं और यद्यपि हमें अपना रास्ता टटोलने में उनसे अधिक सहायता नहीं मिलती परन्तु फिर भी उससे हमें हृदय में बल अवश्य मिलता है।

मैं कभी कभी सोचता हूं आखिर देश में आज हजारों आदमी महीनों और वर्षों से अपने परिवार से दूर अनेक मानसिक और शारीरिक कठिनाइयों में किस आशा में जीवन धारण किये हुए हैं ? आज कौन सी चीज़ है जो गान्धी के मुट्ठी भरी हड्डियों को जब चारों ओर अन्धकार है, कुछ नहीं सूझता, आगे बढ़ा रही है ? क्या वह मानवता और देश के सुन्दर और उज्ज्वल भविष्य की आशा नहीं है ? वह अपने इस विश्वास में निराशा की घनघोर घटाएँ होते हुए भी लकड़ी टेकते टेकते आगे नहीं बढ़ता जा रहा है।

हिटलर ने जब नाजी पार्टी को जन्म दिया तो उसके पास नोटिस निकालने को पैसे नहीं थे। वह हाथ से ही कई प्रतियां कर लेना और अपने सदस्यों के पास पहुंचा देता परन्तु उसके हृदय में आशा और विश्वास था। क्या इस महायुद्ध में जब हिटलर ने अंग्रेजों और मित्र शक्तियों पर आक्रमण किया उस समय उनके लिये अन्धकार ही अन्धकार नहीं था। उनके पास कोई सैनिक तय्यारी नहीं थी, वे आन्तरिक संघर्ष से कमजोर थे और पुराने घड़ों की तरह जरासी ठेस से ढह रहे थे। देखते देखते योरप के अनेक देश उनके सामने बतासे के महलों की तरह बैठ गये। चर्चिल और अङ्गरेजों के लिये और चाहे जो कुछ कहा जाय पर आदमी वह जीवन के हैं, इस निराशा में भी उन्होंने आशा को अपने हाथ से नहीं जाने दिया और विश्वास के साथ अपनी तय्यारियों के साथ जुट गये और आज सभी मोर्चों पर जरमनी से टक्करें ले रहे हैं।

हां! आशावाद के यह मतलब नहीं है कि हम वस्तुस्थिति का अनुमान न करें, आधार रहित स्वर्ण-भविष्य की कल्पना करना आशावाद नहीं है बुद्धि रहित हवाई महलों में घूमते रहना ही आशावाद नहीं है, हमें जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का बुद्धिपूर्ण ज्ञान होना चाहिये। हमारी भविष्य की कल्पनाओं का आधार विवेकपूर्ण और गणित के वैज्ञानिक नियमों पर होना चाहिये परन्तु उनमें स्थान स्थान पर आशा की चमक और विश्वास की मजबूती होनी चाहिये। कठिन परिस्थितियों से युद्ध करते हुए भी हम में आशा का उल्लास होना चाहिये। तुमने ऐबीसिनिया के सम्राट 'हेल सलासी' को तो सुना होगा। कुछ वर्ष हुए इटली ने ऐबीसीनिया पर चढ़ाई करके उसे अधीन बना लिया। हेल सलासी को अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी पर उसने आशा नहीं छोड़ी वह योरोप के राजनीतिज्ञों के दर दर पर मारा फिरता रहा, राष्ट्रसंघ में भी पहुंचा और अपनी दर्दभरी कहानी सुनायी। पर सब व्यर्थ। परन्तु क्या

उसने प्रयत्न छोड़ दिया। नहीं वह प्रयत्न करता रहा। जब विश्व युद्ध छिड़ गया तब उसे यथा अवसर प्राप्त होगया। उसे अपना देश वापिस मिल गया।

तुम्हीं सोचो, दुनिया में आशा न होती तो हमारा जीवन कितना नीरस हो जाता। हममें कार्य करने का कौन सा बल होता। राजा भर्तृहरि के अनुसार आशा छोड़ने के लिए वैराग्य का सहारा लेना चाहिए। परन्तु इस आशा को छोड़ कर मनुष्य क्या करे? भगवद्भजन? किसलिए? इसीलिए न कि उसे भगवत्-साक्षात्कार की आशा है। यदि इस बात का विश्वास न हो तो फिर भगवत्-चिंतन में किसका चित्त लगेगा।

खेद है कि इधर कुछ शताब्दियों से हिन्दुओं का जीवन नकारात्मक (egative) होगया है और निराशा, पराजितभाव और असारवाद ने उसके जीवन के फूल की पंखुड़ियों को कीड़ों की तरह चाट लिया है। शङ्कराचार्य और दूसरे दार्शनिकों ने कहा कि यह वाह्य दुनिया निस्सार है। इन सिद्धान्तों का प्रचार इस लक्ष्य से किया गया था कि भारतवासी बिलकुल दुनियाबी होकर अध्यात्म को न भूल जांय पर इसका परिणाम उल्टा ही निकला, उनमें जीवन शक्ति ही नष्ट हो गई, वे हीन और पतित हो गये, उन्होंने गुलाम बन कर अपनी आत्मा को ही बेच दिया। निराशा ने उनके जीवन में बैठ कर उनके समस्त विकास को ढक दिया।

हमें जीवन के नकारात्मक (Negative पहलू को न ले कर उसके यथार्थ Positive) को अपने सामने रखना चाहिये। इससे मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि हमें पूर्णतः जड़वादी बन जाना चाहिये। मैं यह मानता हूं कि हमारा सुख बाहरी दुनियां से ही हमें नहीं मिल सकता, हमारे भीतर जो कुछ है उसकी आभा उचित

प्रकार से प्रस्फुटित होने पर और उसकी बाहरी दुनियां और उसकी चीजों के प्रति उचित प्रतिक्रिया होने पर ही हम प्रकाश प्राप्त हो सकता हैं परन्तु हमारे सामने जो कुछ दुनियां है वह मिथ्या है सारहीन है कहने भर से काम नहीं चल जायगा। इससे जड़वाद की ओर बढ़ता हुआ प्रवाह रुक अवश्य जायगा परन्तु यदि फिर उसे किसी ओर नहीं लगाया गया तो उसका स्रोत ही सूख जायगा। दुनियां के सब काम झूंठ हैं यह निराशा की शिक्षा है। इसके विपरीत आशा की शिक्षा यह है कि हम अपने अन्तिम अध्यात्म को लक्ष्य में रखते हुए भी ईश्वर की आज्ञा को समझकर दुनियां की जटिल परिस्थितियों को यथार्थ मान कर, भविष्य की आशा लेते हुए उनसे युद्ध करना है और इस दुनियां को अपने और संसार के अनगिनती वर्तमान और भावी प्राणियों के लिये उसे स्वच्छ और सुन्दर बनाना चाहिये। गीता में भगवान कृष्ण ने इसी आशा और विजय का संदेश दिया है।

मेरा कहने का मतलब यह है कि हमारा दृष्टिकोण यथार्थ होना चाहिये और हमें कठिन परिस्थितियों में भी आशा को हाथ से नहीं जाने देना चाहिये। दुनियां में दुख और सुख दोनों हैं। सम्भव है यह बात भी सही हो कि दुख अधिक हों परन्तु केवल इससे ही यह शिक्षा जो हममें निराशा पैदा करे, कुछ हमारे ज्यादा काम की नहीं हो सकती। फिर यहां दुख ज्यादा हों, यह ईश्वर का विधान भी नहीं हो सकता। यदि दुख केवल हमें महान उद्देश्य की ओर से प्रेरित करने के लिये ही आते हैं तो हमें उनसे परेशान होने की जरूरत नहीं, तब तो वह हमें उसके ही प्रिय हो सकते हैं जितने सुख। नहीं, यह मैं नहीं मानता कि ईश्वर की मंशा यह कि इस दिशा में हमारा जीवन निराशा और दुखों की घनघोर घटाओं से घिरा रहे। हाँ मैं चाहता हूं कि कि तुम अपना दृष्टिकोण यह बनाओं कि यह दुनियां सुन्दर है और बहुत सुन्दर बन सकती है,

इसमें हमें जो दुख भी मालूम होते हैं वह हमारे आने वाले सुखों के सन्देश हैं। यह निश्चित है हमारा भविष्य सुन्दर है और हमें जो यह घनघोर घटाएं दिखाई दे रही हैं वह अधिक हैं और केवल इसलिये हैं कि हम दुःखों और असफलता के बाद सुख और सफलता का महत्व समझ सकें। आखिर यदि दुख और असफलताएं न होतीं तो सुख और सफलताओं में मिठास ही क्या होता? मैं तो तुम्हारा निराशाबादी के स्थान में अतिशय आशाबादी होना भी बुरा नहीं समझूंगा क्योंकि बस मनुष्य से जो सदैव निराशावादी रहता है वह व्यक्ति अधिक सफल हो सकेगा जो अपनी आशावाद के झोंके में विवेकपूर्ण आशावाद की सीमा को भी पार कर जाता है।

तुम्हारा पिता।

———

जीवन में नियम और व्यवस्था का महत्व

(५)

प्यारे बेटे,

आज जब मैं सोचता हूं कि कितने युवक जो सफल व्यवसायी, सफल डाक्टर, सफल वकील, सफल प्रोफेसर, सफल सम्पादक और सफल सार्वजनिक कार्यकर्त्ता बन सकते थे, वे आज असफलता के गड्ढे में पड़े हैं, वे वकील हैं पर मुवक्किल उन्हें देख कर दूर से ही भड़कते हैं, वे डाक्टर हैं पर रोगी उनसे अपनी चिकित्सा कराने में हिचकिचाते हैं, वे व्यवसायी हैं पर जो उनके चंगुल में एक बार फँस जाता है वह दुबारा भूल कर उनका नाम नहीं लेता। जब मैं देखता हूं कि वे अपनी कालेज की परीक्षाओं में ऊँचे नम्बरों से पास हुये हैं, उनमें कार्य कारिणी शक्ति भी है तो मुझे उनकी असफलता पर आश्चर्य होता है। परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो हमें उनकी असफलता का कारण ढूंढने में विलम्ब नहीं होगा। उनके जीवन में न कोई नियम है न कोई व्यवस्था है, उनके जीवन का कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं है, उनके उठने, सोने खाने पीने का कोई समय नहीं है, उनका जीवन एक लबड़धोंधों है। उनकी आय व्यय का कोई निश्चित बजट नहीं है, उनके रहन सहन का कोई निश्चित स्टेन्डर्ड (Standard) नहीं है, वे रुपया हाथ में आते ही बहुत सी फ़िजूल की चीजों में उसे उड़ा देते हैं परन्तु जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते।

उनके रहने की जगह, कपड़े, पुस्तकें किसी के रखने या व्यवहार

करने की कोई व्यवस्था नहीं है, सब कुछ अव्यवस्थित ढेर है। कोनों में पड़ी हुई क़ीमती किताबें धूल से भर रही हैं, बक्सों में चूहे कपड़े काट काट कर ढेर कर रहे हैं, घर में कोई चीज अपने उचित स्थान पर नहीं है। इन परिस्थितियों में जीवन को सफलता के लिये स्थान कहां है? उनके घर आकर कौन व्यक्ति उनके जीवन से प्रभावान्वित हो सकता है? उन्हें इन परिस्थितियों में रहकर आराम और शक्ति कैसे मिल सकती है? और यदि उन्हें सफलता प्राप्त न हो तो फिर आश्चर्य क्या है?

परन्तु यदि तुमने उन व्यक्तियों के जीवन को समीप से देखा है जिन्होंने अपने को ऊँचा उठाया है तो तुम देखोगे कि उनके जीवन में नियम और व्यवस्था ही उनकी सफलता का कारण है। आज दुनियां का क्रम नियम और व्यवस्था से चल रहा है। तुम्हीं सोचो अगर आज सूर्य्य अपना नियम छोड़ दे, कभी रात्रि के बारह बजे ही उसकी उग्र-रश्मियां हमारे शरीर को तपाने लगे और कभी दिन में दोपहर को भी उसकी अनुपस्थिति से अन्धकार रहे। अच्छा! तुम रेल को ही लेलो, अगर वह कभी एक समय और कभी दूसरे समय जाने लगे तो तुम्हें कितनी तकलीफ होगी। इसी आन्दोलन के समय सन् १९४२ में गाड़ियों का समय बिलकुल उलट पुलट हो गया तो रेलवे को कितनी हानि हुई।

महात्मा गांधी के जीवन को ही देखो। आज वे अपने जीवन में जितना काम कर रहे हैं, उतना अन्य कितने लोग कर पाते हैं? आज राष्ट्रों के नेता रूजवेल्ट, चर्चिल, हिटलर, स्टेलिन आदि के जीवन में नियम और व्यवस्था न हो तो वे क्या अपने राष्ट्रों का सञ्चालन एक दिन भी कर सकें? महात्मा गान्धी का जीवन बनावट और और सजावट से दूर है, वे सेवागांव में एक झोंपड़ी में रहते हैं, उनके यहां आधुनिक बढ़िया फर्नीचर, रेशम से ढकी हुई कौचें और

खूबसूरत छपे हुए पर्दे नहीं हैं परन्तु एक चीज जो उनकी झोंपड़ी के वातावरण को अत्यधिक प्रभावशील बना देती है वह वहां का नियम और व्यवस्था है। नियम और व्यवस्था से शान्ति भी उत्पन्न होती है। इस झोंपड़ी में बैठे हुए उस मुट्ठी भर हड्डियों वाले मनुष्य की ओर दुनियां की आंखें लगी रहती हैं, दुनियां के कोने कोने से स्त्री और पुरुष उसके दर्शन के लिये आते हैं। आज वह करोड़ों व्यक्तियों का भार अपने कन्धे पर लेकर चलता है पर यदि उसके जीवन में नियम और व्यवस्था न होते तो क्या वह एक कदम भी आगे बढ़ पाता।

दुनियां का सबसे बड़ा धनी फोर्ड अमरीका के एक शहर में बैठा संसार के जीवन में एक अद्भुत भाग ले रहा है, आज उसीके उद्योग के कारण अमरीका में हर तीसरे आदमी के पीछे एक आदमी के पास एक मोटर है। आज करोड़ों रुपये की उसके कारखानों की मोटर हर वर्ष हमारे देश में भी आकर सड़क सड़क पर भों भों करती हुई और धूल उड़ाती हुई दिखाई पड़ती हैं और उनमें बैठे हुए हिन्दुस्तानी साहब अथवा सेठजी सड़क पर चलने वाले व्यक्तियों को अपनी अकड़ के सामने हेय और तुच्छ समझते और उड़ते हुए निकल जाते हैं परन्तु तुम्हीं सोचो आज यदि फोर्ड और दूसरे मोटर के व्यवसायी अपने नियम और व्यवस्था के बल पर बड़े संगठन न करते तो क्या वे अपनी टूटी बैल गाड़ी में ही टरखड़ें करते हुए दिखाई न देते।

हम अपने जीवन में ही नियम और व्यवस्था नहीं रखते परन्तु यदि दूसरे भी अपने जीवन में कोई नियम और व्यवस्था करना चाहते हैं तो उसमें रोड़े अटकना चाहते हैं। पं० गोविंदवल्लभ पन्त कांग्रेस मन्त्रि मण्डल में प्रधान मन्त्री हुए, प्रत्येक व्यक्ति चाहता था कि पण्डित जी उससे हर समय मिलें और घण्टों उससे बात

करें। अनेक तो उनके बँगलों पर जाकर ही अपना अड्डा जमा देते परन्तु वे यह भी सोचते थे कि उन्हें पांच करोड़ के इस प्रदेश का कितना महान कार्य करना है, परिणाम उनके समय और शक्ति का दुरुपयोग। मैंने एकबार यह नियम किया कि जो सज्जन मुझसे मिलने आवें वे अपना नाम और कार्य लिख कर भेज दें बस कुछ सज्जनों को यही शिकायत का एक कारण बन गया। मुझे कुछ लोगों से प्राइवेट बात करनी है अथवा मुझे कुछ अन्य कार्य करना है तब भी लोग समझते हैं कि उनका अधिकार है कि वे जब चाहें बिना मुझे सूचना दिये मेरे पास चले आवें और घण्टों गप्पों में मेरा और अपना समय बरबाद करे। इस तरह कोई भी समाज या राष्ट्र बड़े बड़े कार्य नहीं कर सकता।

मैं अपने देश के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं में व्यवस्था और नियम की बड़ी कमी पाता हूँ। वे किसी भी व्यवस्था या नियम से आज़ाद रहना चाहते हैं परिणाम सब तरह गड़बड़ी। मुझे स्वयं इस अव्यवस्था के कारण बड़े धक्के लगे हैं और मैं जीवन में नियम और व्यवस्था के महत्व को भली प्रकार समझ गया हूं मैं अब उस ओर प्रयत्नशील भी हूँ। तुम जानते हो मेरा जीवन राजनीति, साहित्य, व्यवसाय की एक श्रृङ्खला है और इन विविध धाराओं में मैं जैसा व्यस्त रहता हूँ उस से मैं कभी स्वयं परेशान हो उठता हूं परन्तु ज्यादा काम का होना तो नियम और व्यवस्था का कड़ाई से पालन करने का एक और बड़ा कारण है।

बचपन से ही अपने जीवन में नियम और व्यवस्था पालन करने से वह एक स्वभाव में आ जाती है। प्रारम्भ से ही उसकी आदत डालना तुम्हारे लिये एक बड़ी देन प्रमाणित होगा। मैं यहां कुछ मोटे मोटे नियम तुम्हारे काम के लिये लिखता हूं।

(१) प्रत्येक चीज के रखने का स्थान नियत होना चाहिये और जो चीज जहां से उठाओ, उसको वहीं रख दो।

(२) प्रति दिन प्रातः ही दस पांच मिनट अपनी चीजें संभाल कर उचित स्थान पर रक्खो और उन्हें साफ़ करदो यह काम स्वयं करो, किसी दूसरे पर मत छोड़ो।

(३) यदि किसी से कोई चीज अथवा पुस्तक आदि मंगाओ तो उसे ठीक समय पर वापिस कर दो। अपनी चीज जो उधार दो उसकी याददाश्त लिख लो और उचित समय पर वापिस मंगालो। हमारे यहां तो एक कहावत है "पहले लिख और पीछे दे, भूल पड़े काग़ज से ले।"

(४) पुस्तकें, कपड़े आदि रखने की ऐसी व्यवस्था न हो जिसमें धूल आदि न भरे और न चूहे या दीमक नुकसान करे। प्रति दिन के कपड़े भी हमको ऐसी जगह रखने चाहिये जहां धूल न जासके। मरम्मत वाली चीजों की मरम्मत समय पर करा लेनी चाहिए।

(५) अपने चिट्ठियों के रखने के लिए उचित व्यवस्था करो, सस्ती फ़ायलें रख सकते हो। कभी २ कागजों के इधर उधर फेंक देने से बड़ा नुकसान हो जाता है।

(६) अपने मासिक खर्च का एक बजट बनाओ और देखो कि तुम उसी के अनुसार काम करते हो। उधार मत लो और यदि कोई चीज उधार लो तो समय पर उसको अवश्य ही अदा कर दो।

(७) यदि सम्भव हो सके तो कपड़े, पुस्तकें, फर्नीचर और गल्ला वगैरः भी साल में दो बार खरीदने की व्यवस्था कर लो और देख लो कि कौन चीज कहाँ से सस्ती और अच्छी मिल सकती है।

(८) अपनी दिनचर्या का एक कार्य-क्रम बनाओ और उसके अनुसार ही काम करो। दबाव पड़ने पर अपने नियमों को मत तोड़ो। यदि लोगों को मालूम हो जायगा कि तुम अपने नियमों

का कड़ाई से पालन करते हो तो वे तुम्हारे नियमों का सम्मान करेंगे।

(९) एक डायरी अवश्य रक्खो, इससे तुम्हें अपने जीवन को व्यवस्थित रखने में बहुत सहायता मिलेगी।

(१०) जिससे जो कहो या वायदा करो उसकी पूर्ति पूरी तरह करो। जिसको जो समय नियत करो उसका उसी समय पालन करो।

(११) जीवन में अपनी 'नियम और व्यवस्था' की कभी कभी परीक्षा करो और जो आवश्यक परिवर्तन समझो, उन्हें उस प्रकार कर लो।

तुम्हारा पिता।

जीवन में कला और सौन्दर्य

(६)

प्यारे बेटे,

मैंने तुम्हें आखिरी चिट्ठी में 'नियम और व्यवस्था' पर लिखा था आज मैं तुम्हें 'कला और सौन्दर्य' पर लिखने बैठा हूँ। वास्तव में 'नियम और व्यवस्था' कुछ 'कला और सौन्दर्य' से भिन्न नहीं है वरन एक का दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है या यों कहो 'नियम और व्यवस्था' का विकसित रूप ही 'कला और सौन्दर्य' हैं। मैं यहाँ तुम्हें कोई सिनेमा, नृत्य या चित्रकारी पर कुछ लिखने नहीं बैठा हूँ, केवल यही चीजें कला नहीं हैं और न केवल इन्हीं चीजों में सौन्दर्य निहित है। हमारे प्रतिदिन के जीवन में 'कला और सौन्दर्य' के लिए बहुत स्थान हैं। हम किस तरह खाते हैं, किस तरह सोते हैं, किस तरह चलते हैं, इन सब में कला के लिए स्थान है।

कला या सौन्दर्य्य केवल बनावट या सजावट में ही नहीं है, सरलता और सादगी में ही श्रेष्ठतम कला और सौन्दर्य्य है। अनेक व्यक्ति सजावट और ऊपरी तड़क भड़क में बहुत व्यय करते हैं परन्तु उसमें भी फूहड़पन और भोंड़ेपन को वह नहीं छोड़ सकते वह कीमती कपड़े पहिनेंगे परन्तु उनमें वस्तुतः कोई कला या सौन्दर्य नहीं है। सस्ते और सादे कपड़े भी साफ और उचित प्रकार से पहिनने में अधिक कलापूर्ण और सुन्दर हो सकते हैं। कीमती कपड़े यदि उनमें सिलवटें पड़ी हैं, अथवा उनके रङ्ग

का योग उचित नहीं है, अथवा वे भोंड़े ढङ्ग से पहिने गए हैं तो वे कला और सौन्दर्य से कोसों दूर हैं। अव्यवस्थापूर्ण कीमती कपड़े पहिने बहुत से आदमियों को तुमने देखा होगा। क्या वे अच्छे मालूम होते हैं? इसी तरह तुम बहुत से धनियों के ड्राइङ्गरूप देखो तो तुम्हें वहाँ बहुत सी कीमती चीजों का ढेर मिलेगा पर उनके संग्रह में न तो कोई साम्य है और न वे एक तरतीब से रक्खी ही गई हैं। उन चीजों में आपको कोई एक रुचि या एक विचारधारा देखने को नहीं मिलेगी। बस उन सब का केवल यही तात्पर्य है कि उनके स्वामी के पास पैसा है और पैसे के बल पर उन्हें बन्दी बना दिया गया है। इसीलिये उनमें जीवन नहीं है। परन्तु यदि थोड़ी ही चीज़ों को उचित चुनाव से कलापूर्ण और सुन्दर ढङ्ग से रक्खा और सजाया जाय तो उनमें सौन्दर्य और लालित्य की एक प्रभा चमक उठेगी।

तुमने एक कलाकार को एक मूर्ति तो बनाते देखा होगा। वह खुरदरे भाग को घिस घिस कर साफ कर देता है और प्रत्येक अङ्ग को छील छील कर सुगठित और सुन्दर बनाकर और उस पर पोलिश करके लालित्य पैदा करता है परन्तु यदि वह बिनी छिली भोंड़ी बनी हुई तुम्हारे सामने रख दे तब? उतना ही वज़न का पत्थर उसमें भी मौजूद है पर उसमें सौन्दर्य्य नहीं है। इसी तरह जीवन में कला और सौन्दर्य्य की आवश्यकता है। ज़रूरत है कि तुम अपने जीवन के खुरदरेपन को छीलकर अच्छी प्रवृत्तियों का सौन्दर्य्य पैदा करो।

चित्रकारी, सङ्गीत अथवा काव्य में यदि तुम्हें दिलचस्पी हो तो उधर उनसे कुछ अपनी प्रवृत्तियों को सुसंस्कृत कर सकते हो परन्तु तुम्हें यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि इनका दुरुपयोग भी होता है। विशेष कर सिनेमा, नृत्य और गन्दे साहित्य के

नाम पर कला और सौन्दर्य का दुरुपयोग हो रहा है उससे बचना चाहिए। सिनेमा देखने का मैं विरोधी नहीं हूँ पर आजकल जो कुछ विशेष प्रकार के चित्र बन रहे हैं उनसे लाभ के स्थान में हानि ही अधिक होती है।

परन्तु कला और सौन्दर्य्य तो दूसरी चीजों में से तुम्हें लेना चाहिए। कला और सौन्दर्य्य का तो हमें उत्कृष्ट रूप प्रकृति से ही प्राप्त होता है। हमें अपने में यह प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिए कि हम प्राकृतिक सौन्दर्य्य में आनन्द का अनुभव कर सकें। हम यह देखें कि कला और सौन्दर्य की अधिष्ठात्री प्रकृति ने अपना शृङ्गार किस तरह चुन चुन कर किया है।

उससे हम अपने जीवन में अनेक चीजें ग्रहण करें। हम यह देखें कि प्रकृति किस तरह अपने में व्यवस्था, तरतीब और सौन्दर्य को स्थान देती है।

तुम्हारे जीवन का प्रत्येक अवयव भाव, सादा और सुरुचिपूर्ण होना चाहिए। तुम्हारी प्रत्येक आदत और दैनिक व्यवहार में कला और सौन्दर्य होना चाहिए। खाने, पीने, उठने, बैठने, मिलने बात करने, कपड़ा पहिनने, काम करने सब में एक प्रतिभा होनी चाहिए, भोंड़ापन, जल्दबाजी और बेतरतीबी नहीं। यह बनावट या ऊपरी सजावट से नहीं आता, इसके लिए सुरुचि और और अच्छी आदतें पैदा करने की आवश्यकता है। एक बार जब भोंड़ापन निकल जाता है तो प्रतिभा स्वयं आ जाती है।

जब मैं कला और सौन्दर्य्य की बात करता हूं तो तुम यह भली प्रकार समझ लो कि मेरा उससे यह मतलब नहीं है कि तुम अपने चारों ओर ऐसा वातावरण पैदा कर लो जो देश की

जनता से तुम्हें बिलकुल प्रथक कर दे या तुम्हारी शक्ति से बिल्कुल परे हो। मैं कुछ और लिखना चाहता हूँ पर पास मैं बैठा हुआ एक साधारण कैदी अपनी मांगों से मुझे तङ्ग कर रहा है, उसे दूध चाहिए, वह खीर बनाना चाहता है पर यहाँ मैं अपने थोड़े से दूध में से ही इसे दे सकता हूँ। लेकिन इन बेचारों को तो कभी दूध मिलता ही नहीं। लम्बी लम्बी कैद और वही सूखी रोटियाँ!

तुम्हारा पिता।

"यदि सफलता का कोई एक रहस्य है तो वह दूसरे के दृष्टिविन्दु को समझने में है और उसे अपने और दूसरे के दृष्टिकोण से देखने में है।"

—हेनरी फोर्ड।

श्रम ही महानता है

(७)

प्यारे बेटे,

आज जिस विषय पर मैं तुम्हें लिखने बैठा हूँ, जीवन की सफलता का उसमें एक बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। आज हम दुनिया को जिस रूप में देखते हैं, वह मनुष्य के श्रम का ही परिणाम है, इसीलिए भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है 'कर्म कारण मुच्यते' कर्म ही कारण है। आखिर यह दुनियां की सम्पत्ति जो हम अपने सामने देखते हैं वह क्या है? मनुष्य द्वारा किए हुये श्रम का संग्रह ही है! यदि तुम आधुनिक लेखक जैसे एच० जी० वेल्स की 'आउट लाइनस् ऑफ दी वर्ल्ड हिस्ट्री' पढ़ो, पं० जवाहर लाल नेहरू की 'विश्व इतिहास की झलक' पुस्तक अथव कार्ल-मार्क्स का केपिटल देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि अपने 'श्रम' के बल पर ही दुनिया एक गुफा के जीवन से उठकर वर्तमान आविष्कारों के युग में आ गई है। आज हम जिन चीजों का उपयोग कर रहे हैं वह मनुष्य के श्रम का ही परिणाम है। ज्ञान, आविष्कार और सम्पत्ति का अटूट भण्डार मनुष्य ने अपने परिश्रम से ही इकट्ठा किया हैं।

अङ्गरेजी में एक कहावत है 'श्रम ही ईश्वर की आराधना है'। गीता में भी कहा है 'योगः कर्म सुकौशलम' कर्म करने का कौशल ही योग है। इसमें सन्देह नहीं बुद्धि का बल बड़ा है पर श्रम के बिना बुद्धि इसी तरह है, जैसे हाथ पैर के बिना सिर। इसीलिए

गीता ने ज्ञान और कर्म का गठबन्धन किया है। दुनिया में जितने बड़े बड़े सुधारक हुए हैं उन्होंने श्रम पर बड़ा जोर दिया है। आज विश्वविभूति महात्मा गान्धी चर्खे पर इतना जोर देते हैं पर चर्खा आखिर क्या है? श्रम का एक प्रतीक। उसका हमें एक ही संदेश छिपा है 'श्रम करो'। आज वे धनियों को, विद्वानों को चर्खा कातने को कहते हैं यह क्यों? यदि तुम स्वयं महात्माजी के जीवन को देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि वे कितना परिश्रम करते हैं। वे लन्दन में होने वाली दूसरी गोलमेज परिषद में कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि बन कर गए थे। वे दो तीन घण्टे छोड़ कर दिन रात काम करते थे और समय मिलने पर चर्खा भी कात लेते थे। वे अपने जीवन के एक एक मिनट का उपयोग करते हैं। दुनिया में जितने महान पुरुष हुये हैं, यदि तुम उनके जीवन को देखो तो तुन्हें मालूम होगा कि वे साधारण मनुष्यों से कहीं अधिक परिश्रम करते हैं।

दूसरे देशो में बड़ें से बड़े आदमियों को परिश्रम की आदत सिखलाई जाती है। रूस का निर्माता पीटर 'महान' अपने हाथ से लकड़ियाँ चीरता था, इङ्गलैंड का युवराज 'प्रिन्स आफ वेल्स' जहाज के इन्जन में अपने हाथ से कोयला झोंकने का काम करता है और अमरीका के एक धनी का लड़का मजदूरों में काम करता है। एक भारतीय विद्यार्थी अमरीका में एक मिल में एक स्थान से दूसरे स्थान पर बोझा उठा कर रखने का काम कर रहा था, उसे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि उसके साथ जो युवक काम कर रहा था वह करोड़पति मिल मालिक का लड़का था। उस विद्यार्थी ने एक बार उस मिल मालिक से इस पर आश्चर्य प्रकट किया पर उस मिल मालिक ने कहा "इसमें आश्चर्य की बात क्या है? इसमें सन्देह नहीं कि अधिकांश विशाल सम्पत्ति का एक मात्र

अधिकारी मेरा वही लड़का होगा परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि यह सम्पत्ति उसमें काहिली पैदा करने का कारण हो। इसमें यदि स्वावलम्बन की भावना पैदा होगी तो यह मज़दूर के बाद मैनेजर और मैनेजर के बाद मालिक बन सकता है।" हमारे देश के धनी इससे शिक्षा ले सकते है। हमारे देश में भी इससे पूर्व श्रम का महत्व बहुत बड़ा था। राजा दिलीप के अपने हाथ से गाय चराने और राजा जनक के हल चलाने पर सीता के उत्पन्न होने की कथाओं का आखिर मतलब क्या है? कृष्ण भी तो स्वयं गाय चराते थे? यशोदा माता के पास नौकर चाकर, धन सम्पत्ति की कमी नहीं थी। फिर वह कृष्ण को गाय चराने क्यों भेजती थी? राजाओं के और धनियों के लड़के गुरुओं के आश्रम में साधारण जनता के लड़कों के साथ रहते थे और उनके साथ शिक्षा के अतिरिक्त लकड़ी चीरने, पानी लाने, भोजन बनाने, खेती करने आदि का काम करते थे। यह उनकी शिक्षा का आवश्यक अङ्ग था।

मेरा कहने का तात्पर्य यह हैं कि जीवन में श्रम एक आवश्यक गुण है और दुनियाँ में कोई श्रम ऐसा नहीं है जो तुच्छ हो। अङ्गरेजी में एक कहावत है "जूते बनाना लज्जा का कारण नहीं है, लज्जा का कारण तो बुरे जूते बनाना है।" शेक्सपीयर एक गड़रिया था परन्तु उसने जो काव्य लिखे हैं आज दुनिया के सब विद्वान् साहित्यिक उसकी श्रेष्ठता मानते हैं। तुम्हें मालूम है कालिदास एक बड़ा मूर्ख था जो एक पेड़ पर बैठा हुआ उसी तने को काट रहा था परन्तु श्रम से वही एक ऐसा विद्वान और कवि हो गया कि आज तक उसकी प्रतिभा का दूसरा कोई कवि नहीं हुआ।

आज हमारे देश में श्रम को तुच्छ समझा जाता है, यही कारण है कि हमारे देश का अधःपतन हुआ। आज हम दस्तकारों और

हाथ के काम करने वालों को तुच्छ समझते हैं। यदि कोई धनी अपने हाथ से अपना काम करता है तो हम उसे कंजूस कहने लगते हैं। आज तो शान ही इसमें है कि हमारा हर काम दूसरे आदमी करें। जैपुर के एक राजा की बाबत कहा जाता है कि उसे आबदस्त भी दूसरे आदमी कराते थे। यह कैसी दयनीय दशा है?

आज हम अपने अनेक युवकों को देखते हैं उनमें शिक्षा है, उन्हें साधन प्राप्त हैं पर फिर भी वे सफलता के पथ से दूर खड़े हैं। अपनी नौका के पाल ताने खड़े हैं पर उन्हें लंगर उठाने का साहस नहीं होता। वे सोचते हैं यदि तूफान आ गया तब? यदि हवा ने उनकी नाव को पलट दिया, तब? वस्तुतः बात यह है कि उनमें साहस की कमी है और उन्हें अपने श्रम में विश्वास नहीं है। परन्तु यदि वे लङ्गर को उठाकर अपनी नाव को समुद्र की हिलोरों में छोड़ दें और डांड़ खेने में जुट जांय तो वे अपनी नौका को पार ले जांयगे। साहस दृढ़ निश्चय और बुद्धिमत्ता से किया हुआ श्रम जीवन को सफल बनाने का मूल मन्त्र है।

मैं तो तुमसे यही कहता हूं कि परिश्रम करो, परिश्रम करो। जब तुम्हें असफलता के बादल घिरे हुए दिखाई दें तब और अधिक परिश्रम करो। घनघोर घटाएं छिन्न भिन्न हो जांयगी और आशा का प्रकाश चमकने लगेगा।

तुम्हारा पिता।

नियम और उसका सदुपयोग

(८)

प्यारे बेटे

तुम देखते हो इस दुनियां में जीवन कितनी तेज़ी से मेल ट्रेन की रफ्तार से बढ़ता चला जा रहा है। यह कल की सी बात मालूम होती है जब तुम्हारी माताजी वैयक्तिक सत्याग्रह में गिरफ्तार हुई; फिर छोड़ी गई, मैं गिरफ्तार हुआ और कुछ महीने के लिये छोड़ा गया और फिर गिरफ्तार हुआ और आज बीस महीने से फिर यहाँ हूं पर इतने में ही तुम्हारे जीवन में कितना परिवर्तन हो गया है ! तुम उस समय एक नासमझ बालक थे परन्तु अब तुम्हारे जीवन का नया पहलू सामने आरहा है, अब तुम दुनियां को समझने और सोचने लगे हो। और फिर भी मालूम होता है कि यह सब कल की बातें हों। इसी तरह हमारे जीवन के भिन्न भिन्न चित्र सिनेमा की तरह घूम जाते हैं और आश्चर्य से हम आंखें मलते हुए देखते हैं कि हम जिस जीवनयात्रा पर कुछ ही समय हुआ चले थे देखते देखते उसी अन्तिम मंजिल में आ गये हैं और हमारी यह यात्रा समाप्त ही होने वाली है। ओह ! यह जीवन कितना छोटा है, हमारे पास समय कितना थोड़ा है।

पर क्या हम अपने जीवन के इस थोड़े से समय का सदुपयोग करते हैं। अङ्गरेजों से हमने बहुत सी चीजों की नकल की है और उनकी बहुत सी बुराइयां हममें घर कर गई हैं परन्तु हमने उनकी एक अच्छी आदत को नहीं सीखा वह है उनका समय की पाबन्दी।

वास्तव में हमारा न कोई कार्य क्रम होता है और न समय का विभाजन। जीवन में कितना समय किस में उपयोग करना चाहिये, इस पर हम कभी सोचते ही नहीं। हममें से अधिकांश का उठते, बैठते, खाने पीने का कोई समय नहीं होता। सब कुछ गड़ बड़ है, हमारा जीवन पानी की लहरों पर तैरते हुए लोटे का तरह है, जिधर लहरें आती हैं उस लोटे को बहा कर ले जाती हैं। यह जीवन भी कुछ जीवन है? हमें समय का विभाजन करना चाहिये और अपने दैनिक चर्य्या के लिये समय नियत करना चाहिये। दैनिक चर्य्या नियत करना अत्यन्त आवश्यक है परन्तु कागज पर टाइम टेबिल लिख कर टांग लेने भर से काम नहीं चलता।

नियत दैनिक चर्य्या का पालन करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनका पालन करना हम अपने स्वभाव में डालें। कितने ही युवक अपना कार्य क्रम बनाते हैं दो चार दिन उसपर चलते भी हैं पर फिर यह व्यवस्था अपनी ढिल मिल कार्य से टूट जाती है और फिर वही पुरानी रफ्तार चलने लगती है। हमें अपनी व्यवस्था के तोड़ने के कितने ही अवसर आते हैं और यदि हम एक बार हटते हैं तो हमारा बांध टूट जाता है, हम उस प्रवाह में बह जाते हैं!

यदि तुम महान पुरुषों के जीवन को ध्यान से देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि वे अपने समय का कितना उपयोग करते हैं। एक बार कहा जाता है कि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, जो कभी बंगाल के बे-ताज के बादशाह कहे जाते थे, के घर पर कोई नाटक था, उनके घर पर नाटक हो रहा था परन्तु श्री चटर्जी अपने दैनिक कार्य लिखने में लगे थे। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने कार्य क्रम को कायम रखना ही तो तुम्हारी व्यवस्था की सफलता है। एक एक मिनट के सदुपयोग से ही तो अनेक महापुरुष अपने जीवन में बड़े बड़े

महान कार्य कर गये हैं। महादेव गोविंद रानाडे बाल बनवाने में भी अपना अध्ययन करते रहते थे।

व्यवहारिक मनुष्य बहुधा समय को ही वास्तविक सम्पत्ति कहा करते हैं, लेकिन निःसन्देह यह उससे कहीं अधिक मूल्यवान् है। और इसका उचित उपयोग ही आत्मा का विकास और चरित्र का निर्माण है। प्रतिदिन अगर एक घण्टा भी व्यर्थ की बातों में और आपसी खींचातानी के स्थान पर स्वतः कुशलता में लगाया जाय तो कुछ ही वर्षों में एक मनुष्य विद्वान् और कुशल बन सकता है। अगर इससे आगे बढ़ कर मैं कहूँ कि अगर हम इसी समय को अच्छे और पूँजीभूत कार्यों में लगायें तो हमारा जीवन मानवता के लाभ में एक सक्रिय भाग लेगा और हमारी मृत्यु पर भी हम अच्छे और चमकीले कार्यों की मिल्कियत छोड़ जायेंगे। अगर हम प्रति दिन १५ मिनट भी स्वतः नियन्त्रण में लगायें तो उसका परिणाम हम एक वर्ष में ही अनुभव कर सकते हैं।

मैं एक प्रमुख व्यवसायी को जानता हूँ। उन्होंने मुझे 'स्वतः सुधारने' का जो तरीका बताया, वह स्तुत्य था। इन महाशय की शिक्षा बहुत सीमित हुई थी, फिर भी आज कल एक महत्वपूर्ण व्यवसायी हैं, जिनके प्रत्येक कदम का भारत के उस व्यवसाय पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उन्होंने स्वीकार किया कि उन की सफलता का बहुत कुछ रहस्य उस व्यवस्था पर निर्भर है जिसे वह निरन्तर व्यवहार में लाते हैं। जहाँ तक मुझे याद है मैं उन्हीं के शब्दों में तुमसे उस व्यवस्था का उल्लेख करूँगा :—

"अनेक वर्षों से मैंने एक पुस्तक रक्खी है जिसमें यह उल्लेख रहता है कि मैंने अमुक दिन किन व्यक्तियों से किस बारे में मुलाकात की। मेरे परिवार के सदस्य यह भली प्रकार जानते हैं कि मैं शनिवार को "स्वतः समीक्षा" में व्यस्त रहता हूँ, इसलिए वह मेरे

लिए कोई कार्यक्रम नहीं बनाते खाना खाने के बाद मैं अपने 'अध्ययन के कमरे' में जाता हूँ और एक विचारधारा में डूब जाता हूँ। मैं अपने से पूछता हूँ :—

'मैंने अमुक समय क्या गलती की थी ?'

'मैंने जो कुछ किया क्या वह उचित था, मैं किस प्रकार अपनी कार्य प्रणाली में सुधार कर सकता हूँ ?'

'इस अनुभव से मैं क्या शिक्षा ले सकता हूँ ?'

'मुझे ऐसा मालूम होता कि यह साप्ताहिक समीक्षा मुझे अधिक कुशल बना रही है।'

समय का सदुपयोग ही एक महान् चरित्र की विशेषता है, इसके कारण हम कार्य को स्वयं आगे बढ़ाते हैं, न कि स्वयं ढकेले जाते हैं। इसके विपरीत समय का विचार न किये जाने के कारण हम जल्दबाजी, अव्यवस्था और परेशानियों में घिरे रहते हैं जिसका अन्तिम परिणाम हमारी असफलता होती है ! नेलसन जो अङ्गरेजों का एक बड़ा एडमिरल था और जिसने नेपोलियन को वाटर लू की लड़ाई में पराजित किया था, उसने एक बार कहा था—"मैं अपने जीवन की सफलता इसमें पाता हूँ कि मैं अपने समय से सदैव १५ मिनट आगे रहता हूँ" मुझे आशा है कि तुम इस पर विचार करोगे।

मैं प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना कर्म करते रहने का अभ्यास डालने का प्रयत्न कर रहा हूं और तुम्हें सुनकर प्रसन्नता होगी कि मुझे इसमें सफलता भी मिली है। यहाँ प्राय बैरकों में हम इतने पास २ रहते हैं कि यहां पूर्ण शांति होना असम्भव है। कभी २ तो यहाँ बड़ा हल्ला होता रहता है पर मैं अपना काम नहीं छोड़ता। कभी कभी तो बहुत गम्भीर चिन्तन और लेखन करता रहता हूं। कुछ लोगों को इसमें आश्चर्य भी है। आज में जब यह पत्र लिख

रहा हूं तो यहां व्यवस्था के लिये जो नजरबन्दों की अपनी कमेटी है उसका चुनाव है और बड़ी चहल पहल और कशमकश हो रही है। मेरा ध्यान उधर जाता है पर फिर मैं उसे अपने कर्म की ओर खींचता हूं। मैं इसका अभ्यास कर रहा हूं। मैं चाहता हूं तुम भी इस की आदत में डालो।

मैंने देखा था कि तुम कभी-कभी फिजूल की गप शप में समय बहुत बरबाद करते हो। यह हम लोगों में बड़ी बुरी आदत है। हम देखते हैं कुछ लोग किसी काम के लिए निकले हैं पर उस काम को छोड़ कर कहीं गप्पों में बैठ गये हैं। हम अपना समय तो बर्बाद करते ही हैं पर दूसरों के समय की भी हम कोई चिन्ता नहीं करते। मेरा मतलब इससे यह नहीं है कि मित्रों में बैठ कर मनोरञ्जन की बातें नहीं करना चाहिए पर हर समय और हर कहीं गप-शप में लग जाना कुछ अच्छी चीज़ नहीं है।

समय की पाबन्दी तो हममें है ही नहीं। अगर किसी से मिलने का समय नियत होगा तो हमें अगर उसके पास जाना है तो हम उसके पास समय पर नहीं जांयगे। अगर वह हमारे पास आता है तो हम उससे वहां उस समय मिलने को उपस्थित नहीं हैं अथवा अन्य किसी कार्य में लगे हैं। दो-चार मिनट नहीं कभी-कभी घण्टे आध-घण्टे का इधर उधर हो जाना तो हम कोई बात ही नहीं समझते। पर तुम्हीं सोचो कल यदि रेल अपने निश्चित समय की पाबन्दी न करे तो लोगों को कितना कष्ट हो और कितना समय बर्बाद हो। तुम कभी मोटर लारी से तो गए होंगे ? इनमें से कुछ का जाने का समय नहीं होता। उसमें सफर करने वालों का कितना समय नष्ट होता है। हमारा जीवन भी इसी बिना समय की मोटर लारी की तरह है। जो काम हम समय की पाबन्दी करके कुछ मिनटों में कर सकते हैं उसमें घण्टे बर्बाद हो

जाते हैं। मिलने वाले की इन्तज़ारी में हम बैठे हैं पर वह समय पर नहीं आया और इससे आगे का हमारा सारा कार्यक्रम ही उलट गया। एक गाड़ी के लेट हो जाने से जिस तरह उस लाइन की सभी गाड़ियों के समय में गड़बड़ी पड़ जाती है उसी तरह हम दूसरों के जीवन में भी अव्यवस्था पैदा करते हैं और यही कारण है कि हमारे समाज में समय की पावन्दी करने में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है जब कि अङ्गरेज बड़ी सरलता से कार्य में लाते हैं।

तुमने मीटिंग में देखा होगा कि लोग कभी समय पर नहीं आते। संयोजक स्वयं ही जब कि सभा प्रारम्भ करनी होती है उससे कुछ समय पूर्व का समय नियत करते हैं और लोग भी जानते हैं कि ठीक समय पर कभी सभा प्रारम्भ न होगी, इसलिए वे कभी समय पर नहीं जाते। हर सभा में घण्टा आध घण्टा तो लोगों को इकट्ठा होने में लग जाता है और इसमें जो जितनी ज्यादा समय की पावन्दी करता है उतनी ही इन्तज़ारी उसे ज्यादा करनी पड़ती है। इसके विपरीत मुझे एक वार स्वर्गीय ला० गुलराज गोपाल गुप्ता ने योरुप में एक फ्री मेसन सोसायटी की मीटिंग का हाल सुनाया था, जिसमें दुनिया के सभी हिस्सों से बहुत से आदमी शामिल हुए थे। तुम यह तो जानते ही हो कि बा० गुलराजगोपाल हमारे दिल्ली के मित्र ला० हंसराज ज़ी गुप्त के पिता थे। यह मीटिंग के समय से कुछ मिनट पूर्व ही पहुंच गये, उस समय वहाँ कोई भी नहीं था। परन्तु ठीक समय पर कुछ चन्द मिनटों में ही सैकड़ों आदमी बिना शोर-शार के अपने-अपने नियत स्थानों पर आ कर बैठ गये और मीटिंग का कार्य प्रारम्भ होगया। इसके विपरीत हमारे यहाँ की मीटिंगें और सभायें राष्ट्र के समय का बड़ा दुरुपयोग है। इसके अतिरिक्त वहाँ हम जिस ढङ्ग से कार्य करते हैं उसमें भी समय का बड़ा दुरुपयोग होता है। हम विषय पर वातचीत न करके बाहर की

बातें ज्यादा करते हैं और हमें वहां बहुत सी अनुकरणीय बातें नहीं मिलतीं। मुझे काँग्रेस की मीटिंगों का अनुभव है और खेद है कि वे भी इस बुराई से खाली नहीं हैं।

हम अंग्रेजों को देखते हैं, एक शिक्षित हिन्दुस्तानी से एक शिक्षित अंग्रेज अधिक कार्य करता है परन्तु उस अंग्रेज को फिर भी मनोरञ्जन खेल कूद के लिए काफी समय मिल जाता है। इसके विपरीत हिन्दुस्तानी को दम मारने की फ़ुरसत नहीं है। एक हिन्दुस्तानी दुकानदार को देखो वह सुबह आठ बजे से दुकान खोलता है और रात के बारह बजे तक जुटा रहता है पर इसका मतलब यह नहीं है कि उसकी दुकान पर इन सोलह घण्टे भीड़ लगी रहती है, वास्तव में बात यह है कि उन सब ग्राहकों को वह मजे से चन्द घण्टों में निबटा सकता है। पर हमारा कोई टाइम नहीं है। समय राष्ट्र की सम्पत्ति है और हम इसका अपव्यय कर राष्ट्र की सम्पत्ति का ह्रास कर रहे हैं।

मैं तो चाहता हूँ कि जीवन की सफलता के लिये तुम समय के महत्व को समझो और अपने जीवन के एक २ क्षण का उपयोग करो और नियत समय पर अपने सब कार्य करो। यदि तुम यह करते हो तो तुम अपनी ही नहीं राष्ट्र की भी एक बड़ी सेवा करते हो। जब २ समय की अव्यवस्था हो तो उस ओर ध्यान दो और आगे कड़ाई से उस ओर प्रयत्न करने का निश्चय करो। समय के सदुपयोग और पाबन्दी के लिए मैं तुम्हें एक कार्य की बात बताना चाहता हूँ। प्रातःकाल उठते ही ईश्वर का ध्यान करो। फिर अपनी दैनिक डायरी में देखो कि आज तुम्हें क्या २ कार्य करने हैं। इस तरह की एक डायरी रखना समय की बचत और पाबन्दी के लिए बहुत जरूरी है। रात को सोते समय फिर यह देखलो कि जो २ कार्य तुमने नियत किये थे वह हुए या नहीं। जो कार्य न हुए हों उन्हें

कल के कार्यक्रम में लिखलो और अन्त में नये कार्य लिखकर कल का कार्यक्रम पूरा कर लो। सभा, मीटिंग, व्यक्तियों से मुलाकात आदि में जो समय नियत करो वह जिस तारीख को नियत हो उस तारीख में डायरी में दर्ज करलो। नियत तारीख को जब अपनी डायरी में देखोगे तो तुम्हें उसका ध्यान तुरन्त आ जायगा और इस तरह वह तुम्हारे उस दिन के कार्यक्रम में दर्ज हो जायगा। यदि जो लोग समय की पाबन्दी न करके असमय में आकर तुम्हारे कार्यक्रम को उलट पुलटने का कष्ट करें, तो उनसे ऐसा करने मे इन्कार कर दो।

तुम्हारा पिता।

———

नारी क्या ?

(६)

प्यारे बेटे,

आज मैं जिस विषय पर तुम्हें लिखने बैठा हूँ सामाजिक दृष्टि से वह बड़े महत्व का है। पुरुष और स्त्री के संयोग से ही समाज बना है, दोनों का समाज में एक महत्व पूर्ण स्थान है। हम इस बात को पूरी तरह महसूस नहीं करते कि हमारे जीवन पर—स्त्रियों और पुरुषों पर—एक दूसरे का कितना प्रभाव पड़ता है। यदि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध उचित आधार पर स्थापित न हो तो न तो समाज ही और न हमारा व्यक्तिगत जीवन ही सुचारु रूप से चल सकता है, उसमें विषमता उत्पन्न होने से हमारे जीवन का माधुर्य ही नष्ट हो जाता है। इस पर भी हम इस विषय में कितनी जानकारी रखते हैं या रखने की चेष्टा करते हैं ? वास्तव में बात यह है कि आज इस विषय पर बातचीत करना ही बुरा समझा जाता है। माता पिता गुरु जन इस सम्बन्ध में चुप रहते हैं और युवक और युवतियों को इस सम्बन्ध में जो भी आभास प्राप्त होता है वह उन मार्गों से जो न तो पूर्ण हैं और न श्रेष्यकर ही। परिणाम यह है कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में जो हमारे विचार हैं वह अपूर्ण ही नहीं भयावह हैं।

मैं जब स्त्री और पुरुष की बात कहता हूँ तो मेरा मतलब केवल पति पत्नी से नहीं है। स्त्री जाति में पत्नी है तो माता, बहिन, लड़की भी हैं और पुरुष में पति है तो पिता, पुत्र और भाई भी हैं। आर्य

आदर्श ही यह है कि वह स्त्री जाति में पत्नी के साथ ही माता, बहिन और पुत्री को भी उतना ही महत्वपूर्ण स्थान देता है और पति के साथ ही पिता, पुत्र, भाई, श्वसुर आदि को भी सम्माननीय स्थान देता है। पत्नी का प्रेम महान् है परन्तु माता, बहिन और पुत्री का प्रेम और स्नेह जीवन में कम मूल्यवान् वस्तु नहीं है। इनको यथा उचित स्थान पर स्थापित करना ही हमारे जीवन की सफलता है।

आखिर स्त्री क्या है? पुरुष क्या है? उनका सम्बन्ध केवल विषय विलास की चीज ही नहीं है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे की कमियों को पूरा करते हैं। पुरुष में दृढ़ता है, साहस है, परिश्रम है, बल है, परन्तु साथ ही वह क्रूर है, अक्खड़ है, अड़ने वाला है। स्त्री में दया है, मधुरता है, स्नेह है, त्याग है, भावना है, पर साथ ही वह निर्बल है, भीरु है, चञ्चल है। एक दूसरे से ही समाज पूर्ण होता है और हम अपने जीवन में एक दूसरे से अपनी कमी को पूरी करते हैं और प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं स्त्री और पुरुष में विभिन्नता होने के कारण एक दूसरे के लिए रहस्यमय है और यह उसके आकर्षण का कारण भी हो सकता है परन्तु यह हमें अधःपतन के गर्त में गिराने का कारण नहीं होना चाहिये।

मनु ने कहा है 'यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :' जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं। इसका क्या तात्पर्य है? इसमें सन्देह नहीं योरुप में स्त्रियों का बड़ा मान होता है। मेरे एक मित्र अपनी स्त्री और लड़की के साथ योरुप गये, वे जहाँ २ गये उन्होंने स्त्रियों का बड़ा सम्मान देखा। स्त्रियों का वे बड़ा सम्मान करते हैं। रेलगाड़ियों, बसों में पुरुष स्वयं अपना स्थान एक स्त्री के लिये खाली कर खड़े हो जाते हैं। रङ्ग भेद होने पर भी सब स्थानों पर उसकी पत्नी और स्त्री के लिए पुरुष सदैव यह सम्मान प्रकट करते थे। यह सब बातें हमें उनसे सीखने की हैं। तुमने

हिन्दुस्तानी रेलों में स्त्रियों को खड़ा चलते और पुरुषों को पूरी २ सीट पर तान डुपट्टा सोते हुये देखा होगा, तुमने पुरुषों को भीड़ में धक्कामुक्की करके आगे निकलते भी देखा होगा। यह सब बहुत बुरा है। यह हमारे आचरण की एक निर्बलता प्रकट करता है।

परन्तु योरुप में जो स्त्रियों के लिए सम्मान है वह बहुत कुछ ऊपरी है। वह हमारे लिए आदर्श नहीं हो सकता। जिस समाज का आर्थिक ताना बाना स्त्रियों को एक आर्थिक आधार पर संघर्ष करने के लिए ला खड़ा करता है, वह हमारे लिए आदर्श नहीं हो सकता। जहाँ हम एक ओर इस देश में घर की चारदिवारियों में स्त्री जाति को बन्दी देखते हैं तो दूसरी ओर हम लड़कियों और नवयुवतियों को दिन में दस २ घंटे दुकानों पर सेल्स की मेजों पर खड़ा होते और अपना सौंदर्य्य नष्ट करते हुए देखते हैं, तो हमें अनुभव होता है कि यहां भी सब कुछ ठीक नहीं है। पुरुष समाज ने घर की गुलामी से तो उसे मुक्त कर दिया है पर उस पर मानसिक गुलामी लाद दी है। आखिर दिन रात पुरुषों के सामने अपने को आकर्षण बनाने की चिन्ता क्या है? बनावट और कृत्रिमता में उन्होंने अपनी आत्मा को पीस दिया है। क्या प्रत्येक स्त्री को तितली बनना और एक पुरुष को देखते ही एक विशेष प्रकार की बनावटी आकर्षक आकृति बनाना पसन्द है? नहीं, पर वहाँ के समाज के लिए यह आवश्यक है, इसके लिये ही उन्हें डिपार्टमेंट की सामाजिक शिष्टाचार की शिक्षा दी जाती है।

हमारे प्राचीन नीतिकारों ने हमारे सामने यह आदर्श रक्खा था "स्त्री समाज को अपनी माता और बहिन की तरह आदर और पूज्य दृष्टि से देखो" यदि इस नियम को व्यवहारिक रूप दिया जाय तो इससे अच्छा स्त्री और पुरुष को समझने का दूसरा आदर्श नहीं हो सकता। अपनी माता और बहिन को समझना कितना सरल है।

तुम जिन स्त्रियों के सम्पर्क में आओ अगर उनको तुम माता और बहिन की दृष्टि से देखो तो तुम उनके बहुत समीप आ जाते हो। तुम उनकी विचारधारा के श्रोत में एक डुबकी लगा सकते हो और उनकी मृदुलता, भावुकता और सौंदर्य्य का भी आनन्द ले सकते हो। अपनी सुन्दर बहिन को देख कर कौन भाई प्रसन्न नहीं होता। जब तक यह भावना पैदा नहीं होगी तब तक न तो तुम उनकी उपस्थिति में स्वभाविकता का ही अनुभव करोगे, न उनके स्वाभाविक गुणों का आनन्द प्राप्त कर सकोगे, और न तुम उनके प्रति ही न्याय कर सकोगे।

मैं इसका पक्षपाती नहीं हूँ कि स्त्री और पुरुषों को एक दूसरे से बिल्कुल ही प्रथक रहना चाहिये। परन्तु मैं इसका भी समर्थक नहीं हूँ कि उन्हें आवश्यकता से अधिक मिलना जुलना चाहिये। इस सम्बन्ध में अधिक लिखना आवश्यक नहीं है, मैं यहाँ सूत्र रूप से तुम्हें कुछ नियम बताता हूँ, जिसका तुम्हें पालन करना चाहिये :—

१—स्त्री जाति के प्रति सम्मान के भाव रक्खो।

२—यदि कभी किसी स्त्री के प्रति बुरे विचार हृदय में पैदा हों तो अपनी माता या बहिन को उसमें देखने की चेष्टा करो।

३—किसी स्त्री से एकान्त में अधिक समय तक बात मत करो।

४—स्त्रियों को शयन करते और स्नान करते देखो तो आँखें नीची करलो।

५—गन्दे चित्र, सिनेमा, पुस्तकें आदि मत पढ़ो।

६—स्त्रियों को अपने से आगे स्थान दो. उनसे प्रतिद्वन्दी भाव पैदा मत करो।

७—उनसे बोलचाल में नम्रता का व्यवहार करो।

८—उनकी भावनायें बड़ी तीव्र और सूक्ष्म होती हैं, उन्हें समझने की चेष्टा करो।

९—उनके सौन्दर्य्य का उसी पवित्रता से आनन्द उठाओ, जिस तरह अपनी एक सुन्दर बहिन के सौंदर्य्य को देख कर प्रसन्न होते हो—वह उस पुष्प के समान है जिनका सौंदर्य्य देख कर प्रशंसा करने की चीज है, छूने और तोड़ने की चीज नहीं।

१०—उनसे भागो मत पर उनका सम्मान भी करो।

तुम्हारा पिता

"संसार के समस्त ऐश्वर्य और वैभव की अधिष्ठात्री लक्ष्मी के रूप में नारी शक्ति ही है। विद्वता और मनस्विता के कारण विश्व-विख्यात प्रतिष्ठा की दातृ भी सरस्वती के रूप में नारी शक्ति ही है। संसार के प्राणियों के पोषण करने वाली शक्ति के रूप में वही नारी अन्नपूर्णा है।"

जीवन में धन का स्थान

(६)

प्यारे बेटे,

यदि तुम अपने चारों ओर देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि दुनिया धन की खोज में दौड़ी जा रही है। वकील, डाक्टर, लेखक, सम्पादक, व्यापारी, इञ्जीनियर, मजदूर, किसान, मूर्ख, पण्डित सब धन की दौड़ में पागल हो रहे हैं। जिनके पास धन नहीं है केवल वही नहीं जिनके पास अटूट धन है वे तो उसके पीछे और भी पागल हैं। यह देखो वह सेठजी हैं, इनका बैंकों में लाखों रुपया पड़ा है, इनके तहखाने सोने चाँदी से भरे पड़े हैं, इनके इतने मकान हैं कि वे स्वयं कभी जीवन में उन सब मकानों को देखने भी नहीं गये पर फिर भी दिन रात 'हाय पैसा हाय पैसा' करते ही बीतता है, इन्हें दम मारने की फुरसत नहीं है, दिन रात जो धन संग्रह किया है उसका हिसाब करते २ और उसकी रक्षा की चिन्ता करते २ ही परेशान हैं। मोटर, कोठी, टेलीफून, नौकर चाकर सब कुछ है। कोठी से निकलते और घुसते दरवाजे पर खड़ा एक वर्दी पहने बन्दूकधारी नौजवान फर्सी सलाम करता है पर इनके जीवन में एक चीज ही की कमी है वह 'सुख और शान्ति'। यह एक दूसरे धनी हैं, इन्हें लाखों रुपये साल की आमदनी है, इन्हें कुछ नहीं करना है, केवल एक चेक पर दस्तखत करने से ही जीवन के सुख के सारे साधन उपस्थित हो जाते हैं, इन्हें कुछ करना नहीं पड़ता पर कोचों की मखमली गद्दियों को तोड़ते २ इनका स्वास्थ्य ही टूट चुका है, यह सदैव रोगी

रहते हैं। एक निर्धन को सूखी रोटी में जो मजा आता है वह इन्हें तली हुई चीजियों प्लेटों में नहीं आता। यह एक और धनी हैं इनके पास पैसा बहुत है पर यह दो सूखी रोटी से अधिक नहीं खा सकते, डाक्टरों ने उन्हें घी खाना बिलकुल बन्द कर रक्खा है। हाँ! ऐसे भी धनी हैं जो खूब कमाते हैं और भोग विलास में खूब फूँकते हैं, ये कमाने और खर्च करने की मशीन हैं पर उसका परिणाम? यदि तुम उनसे बात करो तो तुम्हें मालूम होगा कि उनका जीवन भी रिक्त सा ही है, फिर भी सब धन कमाने में लगे हैं। यह वकील साहब हैं, सड़े से सड़े मुकद्दमे को भी अपनी फीस के लिए लड़ाने की ही सलाह देते है, यह वैद्यजी रोगी को इसलिए ठेका से हुये हैं ताकि उससे जितना पैसा निकाल सकें निकालें, यह लेखक हैं, बराबर पुस्तकें लिखते जाते हैं, इसलिये नहीं क्योंकि इन्हें दुनिया को कोई नई बात बताना है बस इसलिए क्योंकि वह पाठकों के जेब से और निकालना चाहते हैं। पंडितजी लालाजी के लिए ध्यान मग्न हो पाठ कर रहे हैं क्योंकि उन्हें लालाजी की सन्दूक में से पैसा निकालना है।

दुनिया में जब पैसे की चारों ओर मार धाड़ मची हुई है तब हमें यह सोचना जरूरी है कि आखिर हमारे जीवन में धन का क्या स्थान है? मैंने तुम्हें अपने एक पत्र में लिखा था कि धन प्राप्त करना स्वयं बुरा नहीं है, यदि वह उचित उपयोग के लिए उचित साधनों से प्राप्त किया जाय, वरन मैं कहूँगा कि मनुष्य को धन अर्थात् जीवन यापन के आवश्यक साधन प्राप्त करना एक कर्त्तव्य है। हमारे शास्त्रकारों ने मनुष्य जीवन के चार आधारभूत कारण बताये हैं— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। धर्म और अर्थ का केवल तात्पर्य पैसे या नोट से ही नहीं है। कार्लमार्क्स ने सम्पत्ति का समाजीकरण करने की बात कही है पर उससे सम्पत्ति—अर्थ—का रूप बदल जाता है। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि समाज में और व्यक्ति के

जीवन में अर्थ अर्थात् संसार के भौतिक साधनों के उपभोग में ला सकने की शक्ति की आवश्यकता कहाँ तक है।

आज हमारे सामने प्रश्न उठता है धन कमायें तो सही पर किस लिए? धन कमाना ही हमारा लक्ष्य नहीं हो सकता। कोई भी समाज जो केवल भौतिक पदार्थों के उपभोग करने के लिए स्थापित किया जाय वह आदर्श समाज नहीं हो सकता। हम धन—भौतिक साधनों को—धन के लिए कमाने की प्रवृत्ति को चाहे वह व्यक्तिगत रहे चाहे उसे समूचे समाज के अन्तर्गत करदें हमारे लिए पूर्ण रूप से एकमात्र लक्ष्य नहीं हो सकती।

एक बात तो निश्चित है कि हमारे जीवन का—व्यक्ति और समाज के जीवन का—लक्ष्य धन कमाना या भौतिक साधनों को इकट्ठा करना मात्र नहीं है। धन किसी अन्य चीज को प्राप्त करने का साधन मात्र है, धन एक शक्ति है जिसके द्वारा हम एक वाञ्छनीय वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए पहली बात जो हमें समझना आवश्यक है वह यह है कि हमारा जीवन केवल धन-संग्रह करने के लिए नहीं है, वह लक्ष्य—ध्येय-नहीं एक साधन है। हमारा जीवन भौतिक साधनों के उपभोग के बिना एक मिनट भी नहीं चल सकता है, इसलिए वे आवश्यक साधन हैं, पर हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य नहीं है। धन, संपत्ति हमारे लिए है हम धन संपत्ति के लिए नहीं। हमारा जीवन धन सम्पत्ति के संग्रह तक ही नहीं उससे आगे भी है।

रस्किन जिसने आंग्ल साहित्य पर अपनी स्वस्थ विचार धारा से अपरिमित प्रभाव डाला था, ने अपनी पुस्तक "क्राउन आफ दि वाइल्ड ओलाइव" में धन के स्वरूप पर बहुत ही विशद और सारगर्भित प्रकाश डाला है। एक स्थान पर वह लिखता है "जिस प्रकार कि मनुष्य खाने को ही अपने जीवन का मूल लक्ष्य नहीं बनाता, उसी प्रकार शिक्षित, चेतनाशील, और विशाल हृदय वाले

मनुष्य "अर्थ" को भी अपने जीवन का एक मात्र उद्देश्य नहीं समझते। प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति भोजन को पसन्द करता है, परन्तु इस पर भी भोजन उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य तो नहीं होता। इसी प्रकार स्वस्थ चिन्तन वाले व्यक्ति रुपया पसन्द अवश्य करते हैं और उसके स्वामित्व पर उन्हें रोमांच भी काफी होता है और होना भी चाहिये परन्तु रुपये से भी मूल्यवान् वस्तुयें हैं जो उनके जीवन को एक निश्चित धारा की ओर ले जाती हैं।

एक अच्छा सैनिक, उदाहरण के लिये, युद्ध में अपने कर्तव्य की पूर्ति पर अधिक जोर देता है। वह अपने वेतन मिलने पर प्रसन्न अवश्य होता है—इस पर भी उसकी इच्छा तो युद्ध के जीतने में होती है। यही डाक्टरों पर भी लागू होता है। वह अपनी फीस चाहते हैं, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन फिर भी वह अपने रोगियों को अच्छा करने की कामना भी करते हैं और अगर उनसे कहा जाय कि आप या तो फीस न लें और अगर लें तो रोगी को ज़हर दे दें तो वह फीस न लेकर रोगी को ठीक करना अच्छा समझेंगे बजाय इसके कि वह रोगी को मार डालें।"

इसमें सन्देह नहीं कि बहुत से व्यक्ति पैसे को आवश्यकता से अधिक महत्व देते हैं। मुझे मेरे एक मित्र ने अपना अनुभव सुनाते हुए एक बार कहा—"मैं एक डाक्टर के यहां गया, मेरे गले के 'टान्सिल' बढ़े हुए थे। डाक्टर ने मेरे टान्सिल की तरफ एक निगाह फेरते हुए पूछा—'आप क्या काम करते हैं?' मुझे बहुत बुरा लगा, यह स्वाभाविक था। डाक्टर साहब मेरे टान्सिल में दिलचस्पी नहीं लेते थे वरन् उनका ध्यान इस ओर था कि मेरी जेब में कितने पैसे हो सकते हैं और वह कितना मुझसे ऐंठ सकते हैं। मैं उनके इस व्यवहार से बहुत खिन्न हुआ और तत्काल एक अजीब घृणा का भाव लेकर उनकी दूकान से बिना कुछ कहे उठ कर चला

आया"। इसलिये, प्रत्येक उचित रूप से शिक्षित मनुष्य के लिए कर्म प्रधान है और धन महत्वपूर्ण अवश्य है लेकिन उसका स्थान द्वितीय है।

आज जब धन के लिए शोषण और अनाचार का बोलबाला है, उस समय हमें टैगोर की भाँति अपने से पूछना है - "जोड़ते ही जोड़ते जाने से क्या लाभ ? स्वर की ऊँचाई या मात्र बढ़ाने से हमें चीख के अतिरिक्त कुछ नहीं मिल सकता। स्वर को संयत रख और उसे पूर्ण रूप से मधुरता देकर ही हम स्वर्गीय संगीत प्राप्त कर सकते हैं।"

मैं यहाँ तुम्हें यह नहीं लिखने जा रहा हूँ कि इस प्रकार के धन एकत्रीकरण की भावना ने किस प्रकार समाज में अव्यवस्था और शोषण को जन्म दे रक्खा है, यह तो विस्तृत रूप में फिर कभी लिखूँगा, पर यह तो निश्चय है कि पैसे की हविश हमारी एक भ्रान्ति भावना का परिणाम होती है, बर्नाड शा ने एक स्थान पर लिखा था—"पैसा भूख मिटा सकता है लेकिन दुख नहीं मिटा सकता। धन पेट की ज्वाला शान्त कर सकता है, आत्मा की पीड़ा नहीं दूर कर सकता। सुख और दुख हमारे दृष्टिकोण के विभिन्न पहलू हैं, धन का उनसे अधिक सम्बन्ध नहीं।

धन हमारे लिए है हम धन के लिए नहीं। भोग हमारे लिये हैं, हम भोगों के लिये नहीं। यदि हम इस मन्त्र को समझ लें तो हम जीवन के अनेक मोड़ों पर गुमराह हो जाने से बच सकते हैं।

मुझे विश्वास है कि तुम अपनी आत्मा को धन और भोगों से ऊपर रख सकोगे। उनका उपभोग करते हुये भी उनमें भूल कर पथ-भ्रष्ट न होगे।

तुम्हारा पिता।

[

ार्य क ने की एक विशेष पद्धति

(११)

प्यारे बेटे

तुमने तैराकों को प्राय यमुना में तैरते हुए देखा होगा। एक तैराक का सारा शरीर पानी में डूबा रहता है परन्तु वह अपने सिर, आंख, नाक, मुँह, कान को पानी की सतह से ऊपर रखता है। उसके हाथ पैर—सारा शरीर पानी के भीतर ही पानी से तुमुल युद्ध करता रहता है परन्तु वह मस्तिष्क को स्वतन्त्र रखता है। पानी की लहरों से खेलता है, कभी २ वे उसके सिर पर चढ़ कर उसे ढक लेती हैं, और फिर वह अपने माथे को पानी के प्रवाह से मुक्त कर लेता है। परन्तु यदि वह अपने सिर को पानी से ऊपर न रख सके तब? यदि वह उनको अपने पर विजय प्राप्त करने लेने दे तब? ऐसी हालत में क्या वह उनका आनन्द ले सकता है? क्या पानी के भीतर उसका दम ही न घुट जायगा?

यह सब क्या है? हमें इससे क्या शिक्षा मिलती है? यह दुनियां एक विशाल सागर की भांति है। यहाँ सुख, दुख, सफलता, असफलता, धन, गरीबी सब भिन्न २ उसकी तरंगें हैं। यदि हमें इसमें सफल तैराक बनना है तो हम क्या करें? हम उनके साथ खेलें या स्वयं उनके खिलवाड़ बन जाँय? जीवन में सफलता का रहस्य क्या है? शांति और सुख कहाँ है? इस विषय में हमारे लिए यही एक शिक्षा है कि हम जब धन प्राप्त करने, विजयी होने, यशोपार्जन करने की दौड़ में दौड़े जा रहे हैं उस समय हम अपने मस्तिष्क को

इनसे ऊपर रक्खें ! हम सफलता, असफलता, विजय पराजय, लाभ हानि की लहरों से खेलें पर अपनी आत्मा को उसमें डूबने न दें, वे मनोरञ्जन की चीजें हों हम स्वयं ही उनके मनोरञ्जन के साधन न बन जाँय। कार्य करने की यह एक विशेष पद्धति है।

गीता में भगवान कृष्ण ने अनासक्ति योग का उपदेश दिया है, यह उपदेश क्या है ? क्या यह उपदेश केवल साधु सन्यासियों के लिए ही है ? क्या अनासक्ति का अर्थ केवल दुनिया से वैराग्य ही है ? क्या हमारे ग्रहस्थ और सांसारिक जीवन में उसका कोई मूल्य नहीं है ? क्या उसमें कोई वस्तु है जिसका हम अपने दैनिक जीवन में प्रयोग कर सकते हैं ? अथवा वह कोई पढ़ने लिखने और दर्शन के तर्क वितर्क का ही विषय है ? नहीं; उनमें एक सन्देश है जिसका उपयोग हर युवक अपने दिन प्रति दिन के व्यवहारिक जीवन में कर सकता है।

योग क्या है ? कृष्ण स्वयं उत्तर देते हैं "योग कर्म सुकौशलम" कर्म करने के कौशल को ही योग कहते हैं यानी कर्म करने की बुद्धिमत्ता को ही योग कहते हैं। यह कौशल क्या है ? तैराक की जिस तरह तैरने में योग है उसी तरह मनुष्य का अपने जीवन में होना चाहिये। जिस तरह तैराक पानी में खेलते हुये भी उससे अनासक्त रहता है, उसमें डूबता नहीं, अपने मस्तिष्क को स्वतन्त्र रखता है, उसी तरह यदि हम अपने जीवन में धन, वैभव, इच्छाओं से खेलते हुये भी उनमें डूबें नहीं, अपने मस्तिष्क को स्वतन्त्र रक्खें, उनमें आसक्त न हों तो हम गीता के इस उपदेश को क्रियात्मक रूप में ले आते हैं।

आधुनिक विद्वान् श्री हक्सले ने en l and m ans नामक पुस्तक में इस विशेष कार्य पद्धति का प्रतिपादन किया। भारतीय जीवन के आधुनिक दार्शनिक सर इकबाल ने भी इस पद्धति की तारीफ की है।

गीता में कितना सुन्दर कहा गया है—'साम्ये स्थितमन' : अपने मन को साम्य स्थिति में रक्खो। 'सम दुख सुख धीर' दुख सुख को समान समझो, सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा' सफलता और असफलता को समान समझो। 'तुल्य निन्दा स्तुतिमौभी' स्तुति यानी प्रशंसा को समान समझो। 'मानापमानयो :' मान और अपमान में सम बुद्धि रक्खो। आदि आदि

कृष्ण कहते हैं :— ·

> आपूर्य माणम चल प्रतिष्ठं
> समुद्र मापः प्रविशन्ति यद्वत ।
> तद्वत कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
> स शान्ति माप्नोति न काम कामी ।

समुद्र में अथाह जल होता है—गम्भीर और अचल प्रतिष्ठा वाला। अनेक नदी उसमें गिर कर समा जाती हैं परन्तु क्या उसमें कोई उद्वेग पैदा होता है ? तुमने अनेक नालों को थोड़ा सा वरसात का पानी आ जाने पर शोर गुल करते हुए देखा होगा, बढ़ते हुए देखा होगा, पर समुद्र सैकड़ों नदियों के मिलने पर भी अपनी पूर्व प्रतिष्ठा ही स्थापित रखता है। इसी तरह कर्मयोगी मनुष्य सफलता असफलता, जय पराजय, मान अपमान इन सबके आने पर भी गम्भीर समुद्र की तरह बहते रहते हैं।

कृष्ण फिर कहते हैं :—

> तस्माद सक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार
> आसक्तो ह्याचरन्कर्म परमा प्नोति पूरुषः ॥

अर्जुन ! इससे तू अनासक्त पुरुष हुआ, निरन्तर कर्तव्य-कर्म का आचरण कर, क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्मा को प्राप्त होता है। कृष्ण यह नहीं कहते 'तू कर्म छोड़ कर सन्यास ले ले' वह यह कहते हैं 'कर्म कर परन्तु उसके परिणाम में आसक्त

मत हो। पानी की लहरों से खेल परन्तु अपने मस्तिष्क को उससे ऊपर रख, उनमें अपने को डुबो मत'।

यह सब क्या है? क्या यह सब केवल कहने और सुनने की ही चीज है? क्या इसका व्यवहारिक जीवन से भी कुछ सम्बन्ध है? उसका हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? कार्य करने की यह व्यवहारिक कला है, इसको समझना चाहिये।

तुमने राजा भृतृहरि का नाम तो सुना होगा। इन्होंने तीन बड़े सुन्दर शतक—नीतिशतक, वैराग्य-शतक और शृङ्गारशतक लिखे हैं। उन्होंने एक जगह लिखा है हम भोगों को भोगने चले थे पर हम स्वयं भुगत गये हैं। ऐसा क्यों है? अनेक मनुष्य अपनी वृद्धावस्था में पश्चाताप करते दिखाई देते हैं; उसका कारण क्या है? वे अपने जीवन के एक पहलू में ऐसे डूब गये कि वह अपने मस्तिष्क को स्वतन्त्र नहीं रख सके।

अब आओ जरा हम अपने जीवन के व्यवहारिक रूप में इसे देखें। हमारे कार्यों में फलाशक्ति न रखने से क्या असर पड़ता है। हम एक कार्य करते हैं, उसके दो ही परिणाम हो सकते हैं, उसमें हमें सफलता मिले, असफलता मिले, हमारी निन्दा हो, प्रशंसा हो, हमें दुख मिले या सुख मिले। हमारे कामों के यही स्वाभाविक परिणाम हैं और कितनी ही बार उन पर हमारा कोई अधिकार नहीं होता, हमारे प्रबल प्रयत्न करने पर भी उसका विपरीत परिणाम होता है। जो हम चाहते हैं उसके विपरीत परिणाम होना ही हमारा दुख है। दुख को विशेष स्थिति नहीं है। हमारा मन जिसकी आकांक्षा करता है उसका प्राप्त न होना ही हमारा दुख है, इसलिये दुख हमारी मानसिक क्रिया है। उस मानसिक क्रिया को उचित रूप देना ही गीता का कर्मयोग है।

यदि हम कर्म के फल में समत्व दृष्टि रख सकें तो उसका हमारी

कार्य प्रणाली पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? हम पश्चाताप और दुख में जो अपनी शक्ति नष्ट करते हैं उसमें अपनी आत्मा को गलाते रहते हैं वह शक्ति हमें दूसरे कामों को करने के लिये बच जायगी। असफलता पर असफलता आने पर भी जो मनुष्य अपने कर्मों से विचलित नहीं होता और न उससे दुखी होता है वही यथार्थ कर्मयोगी है। 'गुरुणा दुःखेन अपि न विचाल्यते' जिसका मन भीषण से भीषण दुःख पड़ने पर भी विचलित नहीं होता ऐसा मनुष्य अपने जीवन में महान् कर्म कर सकता है इसमें क्या सन्देह है। नीतिकारों ने भी कहा है :—

सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा।
चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च॥

अनेक बार जीवन में ऐसी घटनायें घटती हैं जिनसे एक क्षण में हमारा महान् परिश्रम नष्ट हो जाता है, वर्षों का बना हुआ भवन घण्टों में गिर पड़ता है। यह अवसर ही मनुष्य की परीक्षा का समय होता है। मेरे ही जीवन में अनेक बार ऐसे अवसर आये हैं। इस बार ही गिरफ्तार होने से पूर्व एक कार्य में कोई पचास हजार रुपये का लाभ था, अगर एक हफ्ता बाद मैं गिरफ्तार होता तो आवश्यक लिखा पढ़ी सब पूरी होकर काम पूरा होगया होता, परन्तु ठीक अवसर पर गिरफ्तारी होने पर लिखा पढ़ी पूरी न हो सकी, मामला अधूरा रह गया अब वह सब मुकद्दमेंबाजी में पड़ गया है। मुझे दुख हुआ था कि मैंने अपने मस्तिष्क को सँभाला। तुम कभी सुनते हो कि फसल बहुत अच्छी दिखलाई दे रही थी, किसान सुख-स्वप्न देख रहा था पर फिर आंधी, ओले, पानी ने देखते २ उसकी फसल को बरबाद कर दिया। उसके सुख स्वप्न बादलों की तरह छिन्न भिन्न हो गये परन्तु अब किसान क्या करे? माथा पकड़ कर बैठ जाय अथवा नई फसल के लिये परिश्रम से जुट जाय, अपनी हानि से अपने मस्तिष्क को न खो बैठे।

यदि तुम महान् पुरुषों के जीवन में देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि उनके जीवन में सफलता असफलता के झोंके आते रहते हैं। उनको अपमान और पराजय भी उठानी पड़ती है, उन्हें अनेक कष्टों में होकर गुजरना पड़ता है परन्तु यह झोंके उनकी आत्मा को नहीं छू पाते। उनका लक्ष्य उनके सामने होता है और वे दृढ़ और निश्चित कदमों से उसकी ओर बढ़ते हैं। समुद्र में तैरते हुए कुछ लहरें ऐसी आती हैं जो तैराक को धक्का देकर आगे बढ़ा ले जाती हैं, दूसरी कुछ लहरें ऐसी आती हैं जो पीछे धकेलती हैं। इन दोनों ही प्रकार की लहरों का आना अनिवार्य है। इसी तरह जीवन में भी सफलता असफलता की लहरें आती रहती हैं। असफलता और सफलता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यही बात हम विजय पराजय, दुख सुख, मान अपमान के सम्बन्ध में कह सकते हैं।

आज जो विश्व में दो महान् विरोधी शक्तियों में युद्ध हो रहा है उसमें एक को कहीं सफलता मिलती है तो दूसरे को दूसरे मोर्चे पर सफलता मिलती है। दोनों शक्तियां सफलता असफलता के झूले पर झूल रही हैं। परन्तु सफलता का रहस्यमय गुरुमन्त्र क्या है? सफलता असफलताओं में साम्यबुद्धि रखते हुए अन्तिम लक्ष्य की ओर बढ़ना, यही स्नायु-युद्ध है। असफलताओं की उत्तेजना में भी जो अपने स्नायुओं पर अधिकार रख सकेगा वही अपने अन्तिम लक्ष्य पर पहुंचने में सफल होगा। यही हम अपने जीवन-युद्ध के सम्बन्ध में कह सकते हैं।

एक और बात मनोयोग की है। जो चारों ओर अनेक उत्तेजनाओं के होने पर भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शांत मस्तिष्क से कार्य करता है वही मनोयोगी है। एक बार नेपोलियन अपने एक प्राइवेट सेक्रेटरी को युद्ध के मैदान में एक पत्र दिखा रहा था कि एक तोप का गोला तम्बू को फाड़ता हुआ नेपोलियन

के पास ही आकर गिरा। उसका प्राइवेट सेक्रेटरी काँपने लगा। नेपोलियन ने पूछा क्या है? उसने उत्तर दिया "बम्ब"। इस पर नेपोलियन ने कहा—"लेकिन बम्ब से और लिखने से क्या सम्बन्ध? तुम लिखते चलो।" और वह अपने कार्य में ऐसे ही लगा रहा जैसे मानो कुछ हुआ ही नहीं। महात्मा गांधी जब रेल में यात्रा करते हैं तो हर स्टेशन पर हजारों आदमी जय के नारे लगाते हुए गाड़ी को घेर लेते हैं। कभी २ तो रात के बारह और एक बजे भी भीड़ की भीड़ उनके दर्शन के लिये नारे लगाती रहती है। गाड़ी से गर्दन निकालते ही उनके ऊपर अपनी 'जय' की गोलियां दागने के लिए हजारों आदमी तत्पर रहते हैं, परन्तु यह विचित्र मनुष्य इस 'असभ्य प्रेम' पर शांति लिये हुये प्रेम से अपना काम करता रहता है। वह इन्हीं नारों के बीच में विश्व की बड़ी से बड़ी समस्याओं को सोचते रहते हैं और 'हरिजन' के लिए लेख भी लिख लेते हैं।

मनोयग—यह मनोयोग कैसे प्राप्त हो सकता है? एक बार एक सज्जन ने मुझसे यहाँ जेल में कहा 'यहां बैरक में इतना हल्ला गुल्ला आपके चारों ओर होता रहता है फिर भी आप किस तरह लिखते रहते हैं।" मैंने कहा "जरा से मनोयोग के अभ्यास से।" वास्तव में मनुष्य को यह अभ्यास होना चाहिये कि उसे अपने लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तुयें गौण न दिखलाई दें। महाभारत में द्रोणाचार्य ने एक दिन अपने शिष्यों की परीक्षा लेने का निश्चय किया और उसने एक पैर पर मिट्टी की चिड़िया रख कर उसे लक्ष्य भेद करने को कहा पर उन्होंने तीर छोड़ने से पहले हर शिष्य से पूछा "तुम्हें क्या दिखलाई देता है?" किसी ने कहा 'पेड़, जमीन, तालाब सब कुछ' किसी ने कहा बस पूछ और किसी ने कहा 'चिड़िया और वह डाल जिस पर चिड़िया रक्खी है' परन्तु अर्जुन ने कहा मुझे तो केवल चिड़िया की आखें ही दिखलाई देती हैं। इसके बाद गुरु ने तीर छोड़ने को कहा। अर्जुन के अतिरिक्त सब शिष्य चिड़िया के

भेदने में असफल रहे। अर्जुन ही सफल हुये क्योंकि केवल एकमात्र लक्ष्य उनके सामने था।

तुमने अपनी अङ्गरेजी पाठ्य पुस्तकों में वह कविता तो पढ़ी होगी जिसमें उस वीर युवक का वर्णन है जैसे उसके पिता ने जहाज के एक कोने पर तैनात किया था, पर जहाज में आग लगने के कारण वह जल गया परन्तु वहाँ से हटा नहीं। इसी मनोयोग की हमें आवश्यकता है। हम तनिक सी असफलता तथा कष्ट के आते ही तुरन्त उस लक्ष्य से हट जाते हैं।

फिर इस विशेष कार्य पद्धति का हमारे लिये व्यवहारिक संदेश क्या है?

(१) हम जीवन का एक बृहद् लक्ष्य लेकर चलें और उसी लक्ष्य के लिये कार्य करें और उसको प्राप्त करने के लिये हम स्वार्थमय फल की आशा में आसक्ति न रक्खें।

(२) उस वृहद लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए यदि हमें सफलता असफलता, जय पराजय, दुख सुख, मान अपमान जो भी प्राप्त हो उसे साम्य बुद्धि से ग्रहण करें।

(३ कष्ट अथवा प्रलोभन हमें अपने मार्ग से विचलित न करें।

तुम्हारा पिता।

'सब आदमियों में असन्तुष्ट वही मनुष्य है जो यह नहीं बता सकता कि वह क्या करने जा रहा है; जिसके पास संसार में कोई विशिष्ट कार्य नहीं है और उसके निश्चय के लिये प्रयत्न भी नहीं करता। क्योंकि कर्म ही मानवता के समस्त दुख और असन्तुलन को मिटा सकता है—सच्चा कर्म जिसे तुम्हें करना है"

कारलायल

स्वास्थ्य और व्यायाम

(१२)

प्यारे बेटे,

क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि हमारे जीवन में स्वास्थ्य का क्या स्थान है ? मुझे खेद है कि स्वास्थ्य को हमें जितना महत्त्व देना चाहिए बहुत ही कम उसे उतना देते हैं। तुम्हीं सोचो यदि एक के पास अतुल संपत्ति हो, बढ़िया से बढ़िया भोजन खाने को मिल सकते हों, बढ़िया से बढ़िया कपड़े हों, बढ़िया से बढ़िया बिलासिता के साधन हों अथवा महान् विद्वान हो या उनका नाम समाचार-पत्रों में गूँजता हो, परन्तु यदि उसका स्वास्थ्य ठीक न हो, वह सदैव बीमार रहता हो, रोगों से युद्ध करते-करते उसका शरीर बिखर चुका दो। भला ऐसे मनुष्य के जीवन में सुख कहाँ है ? वह अपनी शक्तियों का कैसे उपयोग कर सकेगा ? एक बार एक धनिष्ठ व्यक्ति ने एक हट्टे कट्टे श्रमजीवी को रूखी रोटी को बड़े स्वाद से खाते हुए देखकर ठंडी सांस ली और कहा "यदि मैं अपनी मिठाइयों को इसकी सूखी रोटियों से बदल पाता।"

एक बड़ी पुरानी कहावत है "स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है" और निरोगी काया को प्रथम सुखकहा है। रोगी व्यक्ति का मस्तिष्क कैसे ठीक कार्य कर सकता है ? परन्तु यदि शरीर

निरोग है तो साधारण मनुष्य का भी मस्तिष्क अधिक विकसित हो सकता है। मैं जब तुमसे कहा करता हूँ कि पढ़ने से भी ज्यादा स्वास्थ्य की चिन्ता करो उसका यही तात्पर्य है। मैं जब देखता हूँ कि तुम तन्दुरुस्ती की बाबत बड़े ला परवाह हो तो मुझे बड़ी चिन्ता होती है। मैं तुम्हें इस ओर से फिर एक बार सावधान कर देना चाहता हूँ। इस दुनिया में जिसका शरीर स्वस्थ हो, जिसे अपने कर्म करने के लिए आवश्यक शक्ति प्राप्त है और जिसने अपने कर्म को भली प्रकार करने के लिए व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है उसे सफलता प्राप्त करने का उस व्यक्ति से अधिक अवसर प्राप्त है जिसने अपने शरीर को बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करने में घुसा दिया है, जिसका शरीर उसका कार्य करने में उसका साथ नहीं देता और जिसमें व्यावहारिक ज्ञान की कमी है।

हमारे शास्त्रों में कहा है "शतायु भव" सौ वर्ष जीवित रहो। आजकल के प्राकृतिक वैज्ञानिकों का भी कहना है कि जीव की आयु उस काल से पचगुनी होती है जितना कि उसे पूर्ण विकसित होने में लगता है। मनुष्य का शरीर २१ वर्ष की अवस्था में पूर्ण विकसित हो जाता है, इस हिसाब से उसकी आयु १०५ वर्ष होनी चाहिए। परन्तु हालत क्या है? भारतवर्ष की औसत आयु २१ वर्ष है। योरप में भी यह औसत आयु कुछ काल पूर्वक ४२ वर्ष से अधिक नहीं थी, अब बढ़ रही है परन्तु फिर भी ५१ वर्ष से अधिक ऊपर नहीं गई। इसके विपरीत हम देखते हैं कि पशु इस नियम के अनुसार अपनी पूर्ण आयु प्राप्त करके ही मरते हैं। प्रायः उन्हें रोग भी बहुत कम होते हैं और उनसे मुक्ति भी अधिक शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं। आज मानव-समाज जो अनेक रोगों का घर बना हुआ है पशु उनमें से बहुत रोगों से मुक्त हैं।

आखिर पशुओं के मुकाबिले में भी हमारे इस अधः-पतन का कारण क्या है? मानव-बुद्धि ने निदान और चिकित्सा के इतने आविष्कार किए हैं और दुनिया में चिकित्सकों, हकीम, डाक्टर वैद्य, होम्योपेथ, एलांपेथ आयुर्वेदिक, यूनानी आदि आदि की फौजें सजी हुई खड़ी हैं फिर भी रोगरूपी महाशत्रु डबल मार्च करते हुए आगे बढ़ते चले जा रहे हैं।

एक बार एक महापुरुष ने कहा था यदि मुझे अधिकार मिले तो मैं दुनिया की इन सब औषधियों को बक्सों में भर२ कर समुद्र की तलेटी में इतने नीचे डुबो दूँ कि फिर वह बाहिर न निकल सकें। हमारा यह अनुमान ग़लत है कि औषधियों से स्वास्थ्य प्राप्त होता है। मैं किसी भी अवस्था में औषधियों के सेवन का विरोधी नहीं हूँ। सम्भव है वर्तमान हलतों में कभी २ औषधियों का प्रयोग भी आवश्यक हो सकता है परन्तु एक बात निश्चय है कि हम औषधियों का बहुत अधिक प्रयोग करते हैं। एक डाक्टर के अस्पताल में जाइए, तनिक से जुक़ाम के लिए मरीज के पेट में बोतलों की बोतलें दवायें झोंकी जा रही हैं। वैद्यजी महाराज जरा ज़रा से रोगों पर नवयुवकों को कीमती-कीमती भस्म चटा रहे हैं। आज तो औषधियाँ स्वास्थ्य के स्थान में अनेक रोगों का कारण बन रही हैं। यदि औषधियों से ही जीवन और स्वास्थ्य प्राप्त होता तो हकीम लुकमान, आचार्य धन्वन्तरि और दुनिया के बड़े बड़े डाक्टर मरे न होते।

मैं कई बार सोचता हूँ आखिर उस परम पिता परमेश्वर ने हमारे लिए इतने रोगों को क्यों भेजा? आखिर पशु भी मनुष्य से क्यों अधिक स्वस्थ रहते हैं? यही नहीं हिंदुस्तान में तो हम यह देखते हैं कि शिक्षित और धनी व्यक्ति ही अधिक रोगी हैं। ऐसा क्यों है? पशु हमसे क्यों अधिक स्वस्थ रहता है? क्या

तुमने यह कभी सोचा है। बात यह है कि उसका जीवन अधिक प्राकृतिक है, वह अधिक सादा भोजन करता है और हमसे अधिक परिश्रम करता है। इसके विपरीत हम सोचे बैठे हैं जितना ही हम बढ़िया और तरह तरह का भोजन करेंगे उतने ही स्वस्थ हम होंगे। हम तो सोचते हैं भर पेट भोजन पर कुछ बढ़िया मिठाई और मिल जाय तो खालें। अगर उससे अजीर्ण होगा तो चूरन फांक लेंगे।

हम यदि निरोग और लम्बी आयु वाला होना चाहते हैं तो हमें दो बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। एक व्यायाम और दूसरा भोजन। मैं जब सांयङ्काल को तुम्हें खेल के मैदान में होने की जगह किसी कोने में कोई कहानी की पुस्तक पढ़ते हुए देखता हूँ तो मुझे प्रतीत होता हैं मानो तुम आत्मघात कर रहे हो। समय पर घूमना, व्यायाम करना, खेलना शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य के लिए तो यह जीवन है। तुम बालक को देखते हो। प्रकृति स्वभाव से ही उसमें हरकत करने और खेलने की प्रवृत्त पैदा कर देती है, उसके विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। यदि किसी बालक में यह प्रवृत्ति न हो तो तुरन्त अनुमान किया जाता है कि उसमें कोई रोग है। इसी तरह पशुओं में भी शारीरिक श्रम की स्वभाविक प्रवृत्ति होती है।

मानव समाज के स्यास्थ्य के लिये भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह अधिक से अधिक समय खुले मैदान में साफ हवा से व्यतीत करे। तीव्र गति से साफ हवा और स्वस्थ वातावरण में कम से कम तीन चार मील का घूमना एक अच्छा व्यायाम है। घूमने के लिये सबसे उपयुक्त समय सूर्योदय से एक घण्टा पूर्व है। सूर्योदय तक तुम अपना घूमना समाप्त कर घर वापिस आ सकते हो।

घूमने के नियम—

(१) प्रतिदिन नियमित समय पर टहलने जाओ

(२) साफ और स्वच्छ वातावरण पार्क, जंगल, पहाड़ पर घूमने जाओ

३) घूमने का फासला धीरे २ बढ़ाना चाहिए साधारण तन्दुरुस्ती वाले को ४—५ मील हर रोज टहलना चाहिए

(४) घूमने के समय हलके और आरामदह कपड़े पहिनो, घास और पथरीली जगह में नंगे पैर घूमने से भी अच्छा होता है

(५) काफी तेजी से घूमना चाहिये, जिससे शरीर में हरकत हो

(३) घूमने के समय बदन सीधा और कुछ आगे को झुकता रहे।

(७) नाक से गहरी सांस लेनी चाहिए

(८) टहलते समय प्रसन्न रहिये और चिंताओं को दूर रखिए

(९) अपने मन के एक साथी के साथ भी घूमने जा सकते हो

(१०) घूमने में अगर पसीने आ जांय तो बन्द कमरे के अँगौछे से पौंछ डालो।

इसके अतिरिक्त डण्ड और बैठक अथवा यौगिक आसान में से दस पन्द्रह मिनट कुछ और व्यायाम करना चाहिए। यह यौगिक आसन स्वास्थ्य के लिए बड़े अच्छे हैं। आजकल अङ्गरेजी और अमरीकन पत्रों में भी इनकी खूब धूम है। तुमने 'लिटरेरी डाइजेस्ट' पत्र में इसके चित्र देखे होंगे। पर यह आसन किसी योग्य व्यक्ति से सीखने के बाद ही करने चाहिए और इनका समय क्रमश बढ़ाना चाहिए। 'सूर्य-नमस्कार' एक सुन्दर और वैज्ञानिक व्यायाम है। यह कई आसनों का का सम्मिश्रण है।

दौड़ भी एक अच्छा व्यायाम है। यहाँ जेल में कई प्रतिष्ठित व्यक्ति चक्कर में एक दो मील दौड़ लेते हैं, इससे उनका स्वास्थ्य अच्छा है। इसके अलावा आधुनिक खेलों में हाँकी, वालीबॉल, फुटबॉल, पेड मिण्डन, टेनिस, गोल्फ और पोलो आदि भी अच्छे खेल हैं। हमारे देहात में भो कुछ अच्छे खेल थे जो बहुत सस्ते थे। युवकों को सायङ्काल कोई खेल खेलना आवश्यक है। व्यायाम के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए :—

(१) भोजन के बाद ही कसरत मत करो कम से कम तीन घण्टे का अन्तर अवश्य होना चाहिए।

(२) सुबह या शाम कोई भी समय कसरत के लिए अच्छा है। सुबह यदि व्यायाम करो तो शाम को घूमो और अगर शाम को खेलो तो सुबह थोड़ा घूमना और व्यायाम करो।

(३) व्यायाम इतना ही करो जिससे अधिक थकावट न हो। उचित व्यायाम के बाद सुस्ती के बजाय हल्कापन और फुर्ती आती है।

(४) कसरत के तुरन्त बाद ही पानी नहीं पीना या खाना नहीं खाना चाहिए।

(५) कसरत जहाँ तक हो सके खुली जगह और साफ हवा में करो।

(६) अगर कसरत करने के बाद पसीना निकल रहा हो, तो बन्द कमरे में पसीने को पोंछ कर गरम कपड़े पहिन सकते हो। अगर शरीर में ताकत हो तो उसी समय नहा कर कपड़े भी पहिन सकते हो।

(७) कसरत क्रमशः बढ़ानी चाहिए।

(८) अगर शरीर कमजोर हो और दूसरे व्यायामों से जल्दी

ही थाकन मालूम होने लगती हो तो ऐसी हालत में घूमना ही अच्छा है।

(९) शीर्षासन वगैरः कठिन आसन बिना किसी योग्य आदमी की देख-रेख के नहीं करना चाहिए और यदि इनसे तनिक भी हानि होती दिखाई दे तो समझना चाहिए कि यह आसन करने में कोई गलती है और उसे तुरन्त बन्द कर देना चाहिए।

(१०) ऐसी कसरत नहीं करनी चाहिए जिससे मस्तिष्क को चोट या धक्का लगे।

(११) हफ्ते में कम से कम दो बार सरसों के तेल की मालिश करनी चाहिए।

(१२) साबुन की जगह कोई उबटन का व्यवहार करना अच्छा है।

मुझे उम्मीद है कि तुम स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए व्यायाम उतना ही आवश्यक समझोगे जितना भोजन।

तुम्हारा पिता।

भोजन

(१३)

प्यारे बेटे,

इससे पूर्व पत्र में मैंने तुम्हें व्यायाम और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कुछ लिखा था। हम स्वस्थ मनुष्य किसे कह सकते हैं? जिसे कोई रोग नहीं है, जो अपना कार्य ठीक प्रकार कर सकता है, जिसे अच्छी तरह भूख लगती है और जो भोजन को पचा कर उसे अच्छी तरह खून में परिणित कर लेता है, जिसमें शक्ति और स्फूर्ति है, जिसका मस्तिष्क और मन स्वस्थ है, उसे हम पूर्ण स्वस्थ मनुष्य कह सकते हैं फिर चाहें वह गामा की तरह डील-डौल वाला न हो और जिबेस्को की तरह उसकी मांस पेशियां बहुत स्थूल न हों।

मैं तुम्हें बता चुका हूं कि अच्छे स्वास्थ्य रूपी भवन के लिए व्यायाम और भोजन दो आवश्यक स्तम्भ हैं। हमारे नीतिकारों ने भोजन के महत्त्व को स्वीकार किया है। गीता में भगवान् कृष्ण ने भोजन को तीन प्रकार का बताया है, सात्विक, तामस और राजस।

आयुः सत्त्व बला-रोग्य सुखप्रीति विवर्धना, :
रास्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहारा सात्विक-प्रियाः।

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले ऐसे रस युक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय, ऐसे आहार तो सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।

कट्वम्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनः,
आहारा राजसस्येष्टा दुःख शोकामयप्रदाः

और कडुवे, खट्टे, लवण युक्त और अति गरम तथा तीक्ष्ण, रूखे और दाहकारक एवं दुःख, चिन्ता और रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ राजस पुरुष को प्रिय होते हैं।

यात यामं गत रसं पूति पर्युषितं च यत,
उच्छिष्ट मविचामेध्यं भोजनं तामस प्रियम्ः

तथा जो भोजन अधपका, रस-रहित और दुर्गन्ध-युक्त एवं बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है।

आदर्श भोजन क्या है ?

(१) जो शीघ्र पच जाय;

(२) जो पाचन करने वाले अवयवों जैसे आंतें, जिगर, दिल, फेफड़े आदि पर अधिक वजन न डाले;

(३) जो रोग और कीटाणुओं से रहित हो;

(४) जो शरीर को आवश्यक शक्ति और गर्मी प्रदान करे और भिन्न अङ्गों की पुष्टि करे।

(५) जो शरीर के लिए अनावश्यक पदार्थों को सुविधा पूर्वक बाहर निकालने में मदद करे।

भोजन के लिए मोटे २ नियम यह हैं :—

(१) समय पर नियमित भोजन किया जाय।

(२) यदि भूख न हो तो न खाया जाय। यदि इस नियम

का पालन किया जायगा तो स्वयं ही समय पर भूख अवश्य लगने लगेगी।

(३) जब तक पूर्व भोजन अच्छी तरह न पच जाय दूसरी कोई चीज न खाई जाय। भोजन करने के ४—५ घण्टे से पूर्व कोई चीज न खाई जाय

(४) रस वाली चीजें, दूध, फलों का रस और ठोस चीजें जैसे दाल, भाजी, आदि एक साथ न खाई जांय। जल भी भोजन के दो घंटे बाद पिया जाय।

(५) भोजन में मावा, मैदा, बेसन, आदि की मिठाइयां और पकवान न हों। यदि मीठी चीजें खानी हैं तो शहद, गुड़, मुनक्का, पिण्ड खजूर; पेठे की मिठाई, मुरब्बे और कभी २ फटे दूध के बने रसगुल्ले आदि थोड़ी मिकदार में खाए जा सकते हैं।

६) भोजन में फल के रस, साग सब्जी, तरकारियों का सूप, फलों का रस, दही और मठा उचित और योजना के साथ होना चाहिये। रोटी हाथ की चक्की से पिसे हुए आटे की चोकर सहित होनी चाहिए।

(७) खाई हुई चीज को गले से नीचे उतारने से पहले उसे खूब चबा लेना चाहिए।

(८) भोजन में वह अंश अधिक हो जिससे क्षार (alkaline) पैदा हो और वह अंश कम होना चाहिए जिसमें खटाई (acidity) हो।

(६) सोने के ३—४ घंटे पूर्व तक कोई दूसरा भोजन, दूध आदि पान नहीं लेने चाहिए।

(१०) भोजन करने के दस-बारह मिनट तक विश्राम करना चाहिए पर भोजन करके सो जाना ठीक नहीं है।

तुमने हिन्दू गृहों में देखा होगा माता, स्त्री या पुत्र-वधू चौका-चूल्हा लिए बैठी हैं, पुत्रजी, पतिजी, श्वसुरजी समय पर नहीं आए, बहुत से तो व्यर्थ की बातों में ही फँस जाते हैं। रसोई लिए बैठी हैं, शाम के तीन बज गए हैं ? हिन्दू नारी, बिना पुरुषों को भोजन कराए स्वयम् भोजन नहीं करतीं। जरा उसके धैर्य को तो देखो और हमारी अव्यवस्था से उसे कितनी मानसिक यन्त्रणा होती है, उसका अनुभव करो। इस तरह हमारे भोजन का कोई समय नहीं है। पर एक अंग्रेज? वह ठीक समय पर अपना काम छोड़ देता है, एक मिनट भी इधर से उधर नहीं हो सकता, फिर वह काम चाहे कितना ही जरूरी क्यों न हो ? वह ठीक समय पर अपना भोजन करता है। हम क्यों नहीं ऐसा कर सकते हैं ? मैं यह मानने को तय्यार नहीं हूं कि हम यदि चाहें तो हम ऐसा नहीं कर सकते। यदि हमारे सामाजिक तौर तरीके इसमें बाधक हैं तो हमें उन्हें सुधारना चाहिए। मैं स्वयं भी इसका शिकार रहा हूं और इससे हानि उठाई है।

तुम अपने यहाँ की दावतों में तो शामिल होते हो, परन्तु क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि उनसे राष्ट्र के स्वास्थ्य और साधनों का कितना ह्रास होता है। यहां जो मैदा, मावे और बेसन के अनेक मीठे, तीखे, चरपरे जो भोजन होते हैं उनसे पेट देवता 'त्राहि माम् त्राहि माम्' कर उठते हैं। बरात और दावतों से अनेक लोग बीमार होकर लौटते है। शहर में हर चार में तीन व्यक्ति किसी न किसी पेट रोग से कब्ज, अपच, पेचिस, मन्दाग्नि आदि रोगों से पीड़ित रहते है उनमें से कितना श्रेय इन दावतों को प्राप्त है ? और फिर भला जिस देश में करोड़ों आदमी प्रतिदिन भूखे सोते हैं उस देश में इतने भोज्य सामग्रियों का अपव्यय और झूठन सामाजिक अनाचार नहीं तो क्या है ?

हम अपने मित्रों को जब वे हमारे घर आते हैं तो बढ़िया

बढ़िया गरिष्ठ चीजें खाने को विवश करते हैं फिर चाहे उनका भोजन का समय हो या न हो और उन्हें भूख हो या न हो। शिष्टाचार और स्नेह अच्छी बात है परन्तु यह कैसा शिष्टाचार और स्नेह जो उन्हें रोगी डाल दे ? भोजन करने में हमारे यहां 'तकल्लुफ' बहुत होता है । श्रीमान मधुरप्रियजी के यहां श्री सङ्कोचप्रियजी आए हैं, श्री मधुरप्रियजी उन्हें नाश्ता कराते समय 'दो रसगुल्ले' और कहकर अपनी रट लगाए हैं, श्री सङ्कोचप्रियजी मन में लेना चाहते हैं पर ऊपर से 'न-न' कर रहे हैं, दसियों मिनट इस रस्साकसी में ही निकल जाते हैं और कभी सङ्कोचप्रियजी को आवश्यकता से अधिक खाना पड़ता है तो कभी वे भूखे ही रह जाते हैं। मेरे एक मित्र हैं, उनका मुझे व्यवहार बड़ा पसन्द है मैं उनके यहाँ जब कभी ठहरता हूँ तो उनका नौकर मेरे पास बैठा रहता है दिन भर का भोजन का प्रोग्राम पूंछ २ कर बना लेता है। इसके बाद न कोई आग्रह न कोई तकल्लुफ। एक बार एक सज्जन उनके यहाँ रात को बाहर से आये, भूखे थे, उनसे भोजन के लिए पूंछा गया "भोजन तो करेंगे न ?" उन्होंने कहा "धन्यवाद ! मुझे इस समय भूख नहीं है।" इसके बाद वह इन्तजार करते रहे कि उनसे फिर आग्रह किया जायगा पर यह तो वे सीखे ही नहीं थे। चुप हो गए, सब सो गए पर अतिथि महाशय, को चैन कहाँ ? रात्रि के तीन बजे ही उठ कर ईश्वर-भजन गाने लगे। मित्र उनके भजन का तात्पर्य समझ गये, उन्होंने नौकर को भेजा। नौकर से वे खुल पड़े, कहा "भूख लगी है, कुछ खाने को लाओ।" उन्हें उसी समय भोजन मँगाया गया।

एक और बात ! श्रीमान् ऐश्वर्य-प्रदर्शकजी के यहां उनके मित्र आये हैं। वे ऊपरी टीम टाम और अपना ऐश्वर्य उन्हें दिखाने में व्यस्त हैं, प्रति दिन साधारण भोजन बनता है पर आज तस्तरियों

पर तश्तरियां बन रही हैं। तुमने 'दावते शोराज़ी' की कहानी तो सुनी होगी। 'खातिर-तवज्जह' से घरवाले और अतिथि दोनों परेशान हैं। इसमें स्वाभाविकता नहीं है।

अब जरा 'अङ्गरेजी बाबुओं' की बात भी सुनलो। अधकचरी नकल कितनी खराब होती है यह तुम इससे जान सकते हो। चारपाई से उठते ही 'हिन्दुस्तानी साहब' को चाय और डबलरोटी चाहिए पर 'हिन्दुस्तानी साहब' के 'ब्रेक फास्ट' और 'अङ्गरेजी साहब' के ब्रेक फास्ट में फर्क होता है। अङ्गरेजी साहब हलकी चाय और एक दो टुकड़े 'टोस्ट' खाता है तो हिन्दुस्तानी साहब चाय के नाम पर काढ़ा और टोस्ट के साथ लड्डू, बर्फी और मठरी भी उड़ाता है। हिन्दुस्तानी साहब का 'ब्रेक फास्ट' भारी काफी भारी होता है परिणाम हिन्दुस्तानी साहब के चेहरे पर हमेशा तीन बजते रहते हैं। हिन्दुस्तानी साहब' सोडा वाटर वर्फ रंग और एसेन्स के शर्बत और टीन में पेक किये हुये बे-मौसम के फलों तथा सिगरेटों को अधिक प्रयोग करने लगा है। इसलिए नहीं क्योंकि यह चीजें उसके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं अपितु इसलिये क्योंकि यह 'फैशन' की और 'सोसायटी' की चीजें हैं।

तुमने एक सुन्दर बक्स में बन्द 'फोर्स' नाम की वस्तु तो दूध के साथ नाश्ते में अवश्य खाई होगी। यह चपटे किये हुए गेहूं होते हैं परन्तु इनका गुण हमारे यहाँ के दलिये से कम होता है। ताजी तैयार किया हुआ दलिया इस 'फोर्स' से कहीं अधिक लाभकर होता है, हां! 'फोर्स' सुन्दर पेकिट में जरूर बन्द होता है और कीमती होता है। मैं भोजन के सम्बन्ध में अङ्गरेज़ों की नकल करने का पक्षपाती नहीं हूं। हां! यह मैं मानता हूँ कि भोजन के सम्बन्ध में हमारे यहां बड़ा अज्ञान है और इसके सम्बन्ध में हमें बहुत वैज्ञानिक अन्वेषणों की आवश्यकता है। परन्तु हमें अपना भोजन अपनी

परिस्थितियों, आवहवा और संस्कृति के अनुसार ही बनाना होगा।

अमरीका वगैरः दूसरे देशों में भोजन के सम्बन्ध में बड़े क्रांतिकारी विचार पैदा हो रहे हैं। वहां जो भोजन-सुधार आंदोलन चला है उसमें ताजे फल, दूध, भाजी आदि चीजों को ही अधिक स्थान दिया जा रहा है।

जरा उनका प्रोगाम तो देखो :—

लगभग ८ बजे सुबह—ताजे फल और दूध।

लगभग १२॥ बजे दिन—कच्ची सब्जियों का सलाद काफी मात्रा में, चोकर और आटे की डबलरोटी और मक्खन।

लगभग ७ बजे शाम—पकी भाजी, गोश्त, मछली और अण्डे। पर ऐसे भी लोग हैं जो मांसाहार से परहेज करते हैं और उनकी जगह बादाम, फल, सूखी मेवा, मक्खन आदि खाते हैं।

भोजन की योजना—मैं एक पुस्तक से निम्न योजना कुछ संशोधन करके देता हूँ।—

सुबह—यदि भूख मालूम होती हो तो कोई हलकी-सी चीज जैसे एक गिलास भुना जीरा, नमक और काली मिर्च पड़ा हुआ मठा लो। अथवा रात को एक डेढ़ पाव पानी में एक डेढ़ छटांक किसमिस एक कांच के बर्तन में भिगो दो और उसमें आधे नीबू का रस निचोड़ दो। सुबह इस पानी को एक चम्मच से चलाकर पी सकते हो, चाहो जरा सी चीनी मिला लो।

यदि भोज़न ११ या १२ बजे करते हो तो सुबह दूध, दलिया और गुड़ मिला कर खा सकते हो। तनिक सा गुलाबजल मिला

दो। चीनी हानिकर होती है उसका व्यवहार यथा-सम्भव कम करना चाहिए।

लगभग ६ बजे सुबह—(१) टमाटर, गाजर, खीरा, ककड़ी, पतली मूली, मूली की पत्ता, करमकल्ले की पत्ती, धनियां की पत्ती, लौकी, सलाद की पत्ती, चने का साग इनमें से तीन या चार का जिनमें से एक पत्तीदार पदार्थ हो, कच्चा साग जिसे अङ्गरेजी में स्वाद कहते हैं।

(२) रोटी या चावल और एक पकी भाजी जिसमें मिर्च मसाले ज्यादा न हों। दाल यदि खानी हो तो साबत होनी चाहिये। पर यदि कोई रोग हो तो दाल नहीं खाना चाहिये।

३) मुँह मीठा करने के लिए पिण्ड खजूर, मुनक्का, शहद।

अथवा दही गुड़

लगभग ११ बजे—१२ बजे दोपहर, पानी सादा या नीबू के रस के साथ—खाने के साथ पानी पीना ठीक नहीं है!

लगभग ३-३० बजे—एक या दो प्रकार के ताजे फल या उनका रस

या

तरकारी का सूप

अथवा

एक उफान का उबला दूध और शहद या गुड़

अथवा

बादाम की ठण्डाई

लगभग ७ बजे सांयङ्काल—रोटी एक या दो प्रकार की हरी भाजी मक्खन और एक फल।

लगभग ६॥ बजे या दूसरे दिन बड़े सबेरे या सो जाने पर रात में जब नींद खुले—पानी।

सोते समय दूध नहीं पीना चाहिए क्योंकि उस समय तक भोज़न पच नहीं पाता और सोने पर पेट को विश्राम नहीं मिलता।

दूसरे हफ्ते में दो एक बार कुछ थोड़ा परिवर्तन कर सकते हैं। हलकी और घर की बनी मिठाई के एक दो टुकड़े खा सकते हैं। यदि किसी दिन अधिक मिठाई खानी पड़े तो दूसरे दिन उपवास करना चाहिए।

मैंने जेल में सुबह दलिया खाना प्रारम्भ किया है और उससे लाभ मालूम हुआ है।

तुम्हारा पिता।

————

हमारी भेष-भूषा

(१४)

प्यारे बेटे,

मैं आज जब तुम्हें लिखने बैठा हूं तो प्राची में सूर्य हँसता हुआ अन्तःपुर से निकल रहा है, उसकी रश्मियां सामने घेरे में खड़े हुए इमली के पेड़ों के नन्हें २ पत्तों से मेरे पास पहुँचने के लिए झगड़ रही हैं। उसमें से छनता हुआ प्रकाश मेरी दीवार की बेरकों पर हलका हलका छा रहा है। एक भावुक कैदी के हृदय में उठते हुए तूफान का क्या तुम अनुभव कर सकते हो? और विशेषकर तब जब कि उसकी कैद की मियाद लम्बी हो पर फिर मैं तो ला मियाद कैदी ठहरा। यही भोंड़ी और फूटी दीवारें अपने चारों ओर चौबीसों घण्टे देखकर थक जाता हूँ। यह काठ के बने हुए जेल विभाग और उनके शुष्क अधिकारियों में कला के लिए स्थान कहां! अब जब तुम देखोगे कि मेरे सिर में इतने बाल सफेद हो गए हैं तो तुम आश्चर्य करोगे। यहां बहुत से ऐसे लोग हैं जिनके बहुत से बाल सफेद होते जा रहे हैं। यह तो यहाँ के वातावरण के मनो-वैज्ञानिक दबाव का असर है परन्तु तुम यह न समझना कि मेरे जीवन में यहाँ कोई रस नहीं है। यहां के कलाविहीन और भोंड़े वातावरण में भी मेरी

खयालाती दुनियां मेरे लिए एक अजीव मनोरञ्जन की सामग्री है। दुनियां के संघर्ष से दूर एक कौने में बैठ कर झगड़ती दुनियाँ को देखने और उसके प्रभाव से मुक्त एक नए प्रवाह में बहने का आनन्द मुझे विह्वल कर देता है।

हाँ! तो आज मुझे भेष भूषा के सम्बन्ध में कुछ कहना है। तुमने रेल में तो बीसियों पचासियों बार सफर किया है। वहाँ सैकड़ों भिन्न भिन्न स्थानों—प्रान्तों, नगरों—भिन्न २ विचारों, भिन्न भिन्न शिक्षा और साधनों के व्यक्ति तुम्हें दिखलाई देते हैं। यदि तुम उनके चाल ढाल, भेष भूषा, रङ्ग ढङ्ग को ध्यान से देखो तो एक बात अवश्य दिखलाई पड़ेगी कि सब कुछ गड़बड़ अव्यवस्था है। कहीं उनके जीवन में साम्य नहीं है। क्या हमारे राष्ट्र की कोई एक भेषभूषा पोशाक नही हो सकती! क्या उनके रहन सहन में कोई एक विचार धारा नहीं हो सकती।

यह देखिए यह 'हिन्दुस्तानी साहब' अकड़े चले जा रहे हैं। रङ्ग काला है पर है पूरा साहबी ठाठ, एड़ी से सिर तक योरोपियन भेषभूषा में कसे हुए हैं पर क्या उनके लिए यह स्वाभाविक है? उनका शरीर इस शिकञ्जे से छुटकारा पाने के लिए व्याकुल है, कब घर पहुँचे और इस कैद से छुट्टी मिले। पर मानसिक गुलामी के अलामात सिर पर सवार होकर घूमते हैं और यह मारवाड़ी सेठजी! पूरी मनोरञ्जन की सामग्री, इनके शरीर की हर चीज निकल भागने की कोशिश कर रही है, इनके शरीर पर हर कपड़ा झूल की तरह पड़ा हुआ है और खाल की तरह चढ़ा हुआ है। यह 'हिन्दुस्तानी मिस साहब' इनके 'शॉर्ट स्कर्टस' से बाहर निकली हुई काली काली टाँगें आड़ी तिरछी पड़ रही हैं और यह ठाकुर साहब की धर्मपत्नी जी, इनके चालीस गज के घेर का लहँगा इसी तरह घूमता है जैसे किसी सरकस का 'जाय ह्वील'

यह तो हुई हँसी की बात पर वास्तव में बात यह है कि हमारे राष्ट्र को एक वैज्ञानिक और हमारे देश और परिस्थितियों के अनुकूल एक भेष भूषा की अत्यन्त आवश्यकता है ।

मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि केवल अधिक पैसे खर्च करने से ही सुन्दर और सुविधाजनक वस्त्र प्राप्त नहीं होते । अनेक लोगों को तुमने बहुत कीमती कपड़े बड़े भद्दी तरह पहिनते हुए देखा होगा । यदि उनमें तनिक सुरुचि और समझ होती तो वे उससे आधा खर्च करके भी अधिक अच्छे और साफ दिखलाई पड़ सकते थे । कभी कभी बहुत सस्ते कपड़े भी यदि ठीक तरह सिले हों, साफ हों और ढङ्ग से पहिने हों तो वे कीमती कपड़ों से ज्यादा भले मालूम होते हैं ।

वस्त्रों के उपयोग में भी तुम्हें अपनी कला और सुरुचि का परिचय देने का एक बड़ा अवसर प्राप्त होता है । तुम पण्डित जवाहरलाल नेहरू से तो मिल चुके हो ? क्या वह बहुत कीमती कपड़े पहिनते हैं ? क्या वह उनमें अच्छे नहीं दिखलाई पड़ते ? अच्छे ढङ्ग से पहिना हुआ और अच्छा सिला हुआ एक खद्दर का कुरता, गांधी टोपी, धोती और चप्पल और अधिक से अधिक 'जवाहर जाकट' ग्रीष्म ऋतु के लिए क्या अच्छी पोशाक नहीं है? मेरे एक मित्र बम्बई नेशनल कालेज के प्रिन्सिपल थे. योरप खूब घूमे थे, उनके पास केवल एक चमड़े का बक्स और बिस्तर रहता था । बक्स में एक दो कुरते, एक दो टोपी, एक दो बनियान, और एक दो धोती बस यही सब कपड़े रहते थे । और कुछ अच्छा कपड़ा धोने का साबुन । बस जब सुबह श्याम नहाने जाते तो धोती, बनियान, कुरता और टोपी पर एक हाथ साबुन का लगा कर निचोड़ कर सुखा देते थे । इसमें उन्हें तीन चार मिनट लगते थे पर न धोबी की जरूरत, न बहुत सामान ले जाने की जरूरत और फिर भी साफ झकाझक ।

रात को सोने अथवा खेत या फेक्टरी में काम करने के लिए नाड़ेदार घुटन्ना और आधी बाहों की कमीज अथवा बनियान काफी सहूलियत के हैं। यहाँ मेभे गर्मी में यह घुटन्ना और बनियान बहुत सुभीते के मालूम होते हैं और रोज साबुन से धोने में सहूलियत भी मालूम होती है। लड़कों के लिए यह घुटन्ने और आधी बाहों की कमीज अच्छी और सुविधाजनक पोशाक है। छोटी छोटी लड़कियों के लिए जम्फर अच्छी चीज है परन्तु बड़ी लड़कियों और स्त्रियों के लिए योरोपियन पोशाक बिलकुल ठीक नही है, वह बड़ा भद्दी और अशिष्ट मालूम होती है। इसके विपरीत भारतीय साड़ी बड़ी सुविधाजनक और शानशौकत से भरपूर होती है। उसमें तरह तरह के बेलबूटे और पक्के किनारे लगा कर उसे बहुत सुन्दर बनाया जा सकता है। उसमें कला और सुरुचि के लिए बहुत स्थान है। अनेक योरोपीय वस्त्र विशेषज्ञों ने भारतीय साड़ी की बड़ी प्रशंसा की है 'हालीवुड' की अनेक चित्र-पट अभिनेत्रियाँ भारतीय साड़ी को देखकर मुग्ध हो गई हैं। लहँगा ओढ़नी अथवा योरोपियन पोशाक के स्थान में स्त्रियों के लिए साड़ी और ब्लाउज दी अधिक सुविधाजनक सस्ती और सुन्दर पोशाक हैं और वही हमारी राष्ट्रीय पोशाक होनी चाहिए।

पुरुषों के लिए पेन्ट कोट मुझे किसी तरह नहीं जँचते। विशेष अवसरों और मिलने-जुलने के लिये अच्छी सिली शेरवानी, चूड़ीदार या कम ढीला पाजामा और गाँधी टोपी अच्छी, कम खर्चवाली और प्रभावपूर्ण पोशाक है। केन्द्रीय ऐसेम्बली के एक आंध्र प्रान्त के सदस्य जो अब एक डिपुटी कमिश्नर हैं अवस्था करीब ४० वर्ष सुगठित शरीर और ऊँचा कद था जो बेडौल न था ऐसे शरीर पर तहमद, कोट और साफा पहन कर ऐसेम्बली में आते थे, मुझे कुछ यह पोशाक जँचती न थी। मैंने आग्रह करके उनके लिए एक शेरवानी, गाँधी टोपी और चुस्त पायजामा सिलवाया और उनको

उन्हें पहिना कर भेजा। वह अब कुछ के कुछ दीखने लगे थे। सब लोगों ने उनके वस्त्र परिवर्त्तन का स्वागत किया। फिर तो और कई सदस्यों ने भी शेरवानी, गाँधी टोपी और चुस्त पायजामा सिलवाये। मुझे मालूम है कई दर्जन आदमियों ने मुझे देखकर अपनी पहली पोशाक छोड़कर शेरवानी और पायजामा अपनाया है। एक ईसाई सज्जन जो एक बीमा कम्पनी के सेक्रेटरी हैं बड़े ठाटबाट से शेरवानी पायजामा पहिनकर निकलते हैं। वे पहिले के कोट, पेन्ट से अधिक अच्छे मालूम होते हैं। एक कहावत है कि 'बनिया का थैला कुछ उजला कुछ मैला' यह बनिये के थैलों के लिए ही नहीं, हम दूसरे हिन्दुस्तानी लोगों के लिये भी कह सकते हैं। बहुत बढ़िया कपड़े पहिनने पर भी बहुत से लोगों में कुछ साफ़ और कुछ मैली चीज़ें दिखलाई देती हैं। साफ़ पालिश किये हुए जूते पहिनने का बहुत कम लोग ध्यान रखते हैं। वस्त्रों के सम्बन्ध में 'सादा पर साफ़ और सुरुचिपूर्ण' यह हमारा नारा होना चाहिये। हम कम से कम कपड़े और वस्तुएँ व्यवहार में लावें पर वे साफ़, सुरुचिपूर्ण और ढग से व्यवहार की गई हों।

पोशाक पहिनने में कुछ अधिक समय, धन और शक्ति के व्यय करने की आवश्यकता नहीं है। थोड़े से सावधान रहने की जरूर ज़रूरत है। जैसे यदि कोई कपड़ा कहीं से 'दांत' दिखा जाय तो उसे तुरन्त दुरुस्त करा लेना चाहिये। बटन एकसे और पूरे रहने चाहिये। कपड़ों के रग के चुनाव, बटन आदि के चुनाव का पोशाक पर बड़ा असर पड़ता है। बटन के टूट जाने पर तुरन्त वैसा ही दूसरा बटन लगा लेना चाहिये। सिलवट दार कपड़े भद्दे मालूम होते हैं, इसलिए कपड़ों पर सिलवटें दूर करने के लिये एक 'इस्तरी' रखना चाहिये।

भारतवर्ष एक गरम देश है, यहाँ बहुत तंग और कसे हुए कपड़े पहनना सुविधाजनक और स्वास्थ्य के लिये अच्छा नहीं है

परन्तु बहुत झावर-झल्ला कपड़े न तो अच्छे लगते हैं और न सुविधाजनक ही होते हैं। कपड़े ऐसे होने चाहिये जो बदन पर 'फिट' भी हो जायँ और उनमें से हर अङ्ग को हवा भी खूब अच्छी तरह लगे।

कपड़े जहाँ तहाँ फेंक देना बहुत बुरी आदत है। जिन्हें अपने कपड़े अच्छी तरह रखने की आदत नहीं है वह अधिक खर्च करने पर भी साफ़ नहीं रह सकते प्रति दिन के कपड़े भी ऐसे स्थान पर रखने चाहिये जहाँ गर्द, मिट्टी, पानी न जा सके। कमरे में भी यदि कपड़े इधर-उधर फैले रहना अधिक खूँटियों पर टँगे रहना अच्छा नहीं मालूम होता। उसके लिये लकड़ी की अथवा दीवार में बनी हुई कपड़े रखने की अलमारियाँ बड़ी सुविधाजनक होता है।

तुम्हारा पिता

———

खतरे से सावधान !

(१५)

प्यारे बेटे !

तुम्हारे 'ताऊजी' जब मंसूरी में डाक्टर थे, तुम उस समय छोटे थे, शायद तुम्हें उस समय की बातें याद न रही हों, तुम जब मोटर में देहरादून से मंसूरी गए, तब तुमने जहाँ तहाँ लट्ठों पर लाल स्याही से 'खतरा' लिखा हुआ देखकर उसका मतलब पूछा था। पहाड़ में कितने ही मोड़ खड्डे, ऊबड़ खाबड़ स्थान ऐसे होते हैं जहाँ जरासी असावधानी से, जरा से हाथ के बहक जाने से मोटर का अपने रास्ते से हटकर किसी खड्डे में गिर जाने अथवा किसी चट्टान से टकरा जाने का खतरा रहता है, कभी-कभी मोड़ पर दो मोटरों के—यदि वहाँ सावधानी से न चला जाय तो टकरा जाने की सम्भावना भी रहती है। इसीलिए ऐसे स्थानों पर मोटर ड्राइवरों को सावधान करने के लिए लट्ठों पर पाटियाँ लगा दी जाती हैं, जिस पर लाल चमकती स्याही में 'खतरा' लिख दिया जाता है।

मनुष्य के जीवन में भी ऐसे ही अनेक मोड़ और खड्डे आते हैं, जिनमें तनिक सी असावधानी—लापरवाही करने से उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है। अच्छी-अच्छी नीति सम्बन्धी पुस्तकें और गुरु की शिक्षा और परामर्श इन 'खतरे की पाटियों' का काम देती है।

यदि कोई युवक पर्वाह न करके अपने जीवन यान को व्यर्थ ही किसी चट्टान से टटरा दे तो इसका अपराध किस पर है ? उसकी गणना मूर्खों में क्यों न की जाय ?

आज अनेक लोगों को तुम चरित्रबल, उन्नतिशील और स्वस्थ देखते हो, और दूसरों को दुश्चरित्र, पतित और रोगी देखते हो। इसका कारण क्या है ? क्यों कुछ लोग अच्छे हैं और कुछ लोग बुरे ? क्या यह ईश्वरीय-विधान है ? क्या यह पैतृक देन ही है ? यह अनेक मनुष्य जो तुम्हें चोर, डाकू, कर्मचारी, रोगी दिखलाई पड़ते हैं क्या जन्म से ही वे ऐसे थे ? या वे एक दिन में ऐसे बन गए ? यदि समय पर उन्हें कोई 'खतरे की घाटी' दिखलाने वाला होता और वह उस खतरे से सावधान हो जाते तो क्या इनका पतन होता ? इसमें से अधिकाँश उतने ही भले हो सकते थे जितने अनेक वे मनुष्य जो समाज में 'सज्जन' कहे जाते हैं।

यहाँ कितने ही कैदी ऐसे हैं जो खून और कत्ल के अपराध में लम्बी २ मियाद के लिए कैद है परन्तु उनमें से कितने सी बड़े ईमानदार और भले आदमी हैं। फिर क़त्ल या डाके में कैसे शामिल हो गये ? यह एक आश्चर्य की बात है। उन्हें खतरे की पाटी दिखलाने वाला कोई न था अथवा बुरे सङ्गत में पड़कर वे उस 'खतरे की पाटी' की तरफ बिलकुल लापरवाह हो गये थे। जरा सी असावधानी से उनके जीवन का प्रवाह ही बदल दिया।

तुम जिस उमर से गुज़र रहे हो उसमें अनेक खड्डे, मोड़ पड़ते हैं। अनुभव की कमी के कारण सम्भव है तुम उनसे लापरवाह हो सकते हो। तुम्हें अनेक दुश्चरित्र लड़के ऐसे मिल सकते हैं जो तुम्हें बहका दें और अपने साथ तुम्हें भी ले जाकर खड्डे में गिर जाँय। कुछ पुरुष और स्त्रियाँ भी ऐसी हो सकती हैं जो ऊपर से 'भले'

दिखलाई दें पर तुम्हें खड्डे में गिरने का कारण हो जाँय । मैं ऐसे सभी खतरों से तुम्हें 'सावधान' कर देना चाहता हूं। मैं जानता हूँ। जिस विषय पर मैं तुम्हें लिखना चाहता हूं प्रायः पिता पुत्र उस पर बात चीत करने में सङ्कोच करते हैं परन्तु गुरुजन ही यदि उन गड्ढों को दिखाकर सावधान न करें तो कौन करेगा ? यदि इस सम्बन्ध में वे अच्छे हाथों से शिक्षित न होंगे तो बुरे हाथों से उन्हें दीक्षा मिलेगी।

तुमने महाभारत में भीष्म और अर्जुन की कथायें पढ़ी हैं। राम और लक्ष्मण की वीरता पढ़ २ कर तुम सजग हो उठते हो। उस दिन तुमने गुरुकुल के उस ब्रह्मचारी के अद्भुत पराक्रम के खेल देखे थे, उसके सुगठित शरीर, चौड़ी छाती और चमकते हुए नेत्र देख कर तुम फ़ड़क उठे थे। उसकी छाती पर कितने मेडल चम चम चमक रहे थे। यह सब किसका परिणाम है? ब्रह्मचर्य का! ब्रह्मचर्य कोई स्वर्ग प्राप्ति ही के लिए आवश्यक नहीं है। भावी जीवन की नींव ही ब्रह्मचर्य पर कायम होती है, यदि यह नींव कमजोर हो तो इस पर जो भी भवन बनाया जायगा, वह निर्बल होगा। वह जरा से आँधी तूफ़ान के धक्के से गिर सकता है।

यह जो तुम मनुष्य का शरीर देखते हो वह चौबीस वर्ष की अवस्था तक पूर्ण परिपक्व अवस्था में पहुँचता है। तुमने कम्पनी वाली कोठी के बाग में पेड़ों को बढ़ते हुए देखा होगा, जब वे पौधों की शक्ल में ही हैं, उस समय ही यदि कोई ऐसा कर्म किया जाय जिससे उनकी बढ़ती रुक जाय तो क्या परिणाम होगा? वे सूख कर नष्ट हो जांयगे हम जो आहार करते हैं उससे रस बनता है, इससे खून और हड्डियाँ बनती हैं और खून से वीर्य बनता है। वीर्य रक्त में उसी तरह ओत-प्रोत

रहता है जैसे दूध में मक्खन। यह वीर्य पुनः रक्त में मिलकर हमारे शरीर को पुष्ट करता है, उसकी वृद्धि से हमारे मुख पर श्रोज श्रौर चमक दिखलाई पड़ती है। यदि यही वीर्य खून से प्रथक कर दिया जाय तो मक्खन निकले हुए दूध की तरह निस्तेज हो जायगा। परिपक्व श्रवस्था पहुँचने से पूर्व तो वीर्य को नष्ट करना बड़ा ही खतरनाक है।

इस पर भी कुछ लड़के बुरी संगत में बैठ कर श्रपने वीर्य को नष्ट करने की श्रनेक कुटेव सीख लेते हैं। इससे उनका सारा भविष्य ही नष्ट हो जाता है। एक बार यदि कोई नवयुवक इन कुटेवों में फँस जाता है तो जिस तरह श्रफीमची श्रफ़ीम की श्रादत के चंगुल में फँस जाता है उसी तरह वह श्रपने को श्रधिक श्रौर श्रधिक नष्ट करता जाता है। उसके चेहरे पर पीलापन श्रौर श्राँखों के चारों श्रोर गड्ढे श्रौर कालिमा छाती जाती है। उसे कुछ व्यक्तियों में बैठने या बात करने में लज्जा मालूम होने लगती है। उसे श्रपने में श्रात्म-बल की कमी महसूस होने लगती है। उसे भूख कम लगती है श्रौर उसकी पाचनशक्ति नष्ट होने लगती है। ऐसे नवयुवकों का जीवन ही नष्ट हो जाता है।

यह श्रादतें बुरे लड़कों में छूत की तरह फैलती हैं। इसलिए बुरे लड़कों से दूर रहना चाहिए। जो लड़के ऐसी श्रादतों में पड़ जाते हैं दुर्भाग्य से उन्हें रास्ता दिखलाने वाला कोई नहीं होता, स्वयं उनमें साहस श्रौर श्रात्म-बल की कमी होती है।

हर युवक को 'खतरे की पाटी' श्रपने सामने रखनी चाहिए। १५-१६ वर्ष से लगा कर २४ वर्ष तक ऐसा समय है जब नये २ पर श्रपरिपक्व विचारों का विकास होता है, इसमें नई २ भावनायें पैदा होती हैं श्रौर उनके बह जाने के लिए श्रनेक प्रलोभन होते हैं। उस समय यदि वे बुरी संगत में पड़ जाते हैं तो वे श्रवश्य

किसी खड्ड में गिर पड़ते हैं। "खतरे से सावधान" चेतना को जाग्रत रखना चाहिए। महात्मा गांधी जब नवयुवक थे तो एक ऐसे ही मित्र के साथ एक वेश्या के यहां पहुँच गये परन्तु इस चेतना ने उन्हें अन्तिम समय पर सावधान कर दिया। वे खड्ड में गिरने से बच गये। कौन जानता है यदि वे उस समय सावधान न हुए होते तो किस प्रवाह में बह जाते और आज कहां होते।

तुम पूछ सकते हो जब इन चीजों के परिणाम इतने बुरे हैं तब भी युवक इनमें क्यों फँस जाते हैं। इनमें कुछ तो प्रारम्भिक आकर्षण होता है। यह चीजें युवकों के जीवन में रहस्यमय आवरण के साथ होती हैं और नवयुवक की प्रवृत्तियां ही रहस्य मय चीजों में जाने और उनका उदघाटन करने की होती हैं। नवयुवक इनमें एक रोमान्स की तरह घुसता जाता है पर फिर प्रवाह में बह जाता है, और यह चीजें युवकों को इसी तरह फँसा लेती हैं जिस तरह अफीम अफीमची को, वह तड़फड़ाता है पर अफीम को नहीं छोड़ सकता। इसीलिए 'केवल एक बार' के प्रलोभन में नहीं पड़ना चाहिये।

तुम्हें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि यदि तुम्हें उच्च बनना है तो तुम्हें अपने जीवन के भवन की स्थापना सदाचार की सबल नींव पर करना चाहिये। ब्रह्मचर्य, अस्तेद (चोरी न करना) सत्य अहिंसा, त्याग, श्रम परोपकार यह सात खम्भे हैं।

तुम्हारे जीवन का यह सबसे 'सुन्दर और स्वर्णिम" मौसम है। तुमने बहुधा सुना होगा कि इसी मौसम में बीज बोये जाते हैं, और यह ठीक भी है। अगर इस मौसम में तुम कुछ नहीं बोते या गेहूं के स्थान पर घास पात बोते हो तो तुम एक सुन्दर भविष्य की कल्पना नहीं कर सकते। अपने आगे जीवन में, जब

तुम इन पर एक विहंगम दृष्टि डालोगे, उस समय तुमको इसकी कमी प्रतीत होगी।

अभी तुम्हारा मस्तिष्क इस अवस्था में है कि जब तुम इसे किसी भी ओर ढाल सकते हो लेकिन धीरे २ यह पत्थर या फौलाद का रूप धारण कर लेगा। तुम एक वृद्ध की आदत नहीं बदल सकते, जैसा वह करता आया है, भविष्य में भी वह वही करेगा। इसीलिए अगर तुमने समझ और ईमानदारी से ऐसी भूमि तैयार की जिसमें सद्‌गुणों के बीज बोये, उसे पानी और खाद देकर पोषित किया, घास और सरपत उखाड़ कर उसे व्यवस्थित रूप दिया तो तुम अपने भावी जीवन को एक ऐसे उद्यान में परिवर्तित कर सकोगे जिसकी सौरभ से तुम्हारा जीवन धन्य होगा, सफलता तुम्हारे कदमों में होगी।

तुम्हारा पिता।

———

मित्रों का चुनाव

(१६)

प्यारे बेटे,

मित्र ? आह ! दो अक्षरों का शब्द कितना मधुर है । एक नीतिकार ने लिखा है—

> शोकाराति भये त्राणं प्रीति विश्रम्भ भाजनत् ।
> केन रत्नमिदं सृष्टं मित्र मित्यक्षरद्वयम् ॥

शोक, शत्रु, भय इनसे बचाने वाले प्रीति और विश्वास के पात्र किसने 'मित्र' इन दो अक्षरों को बनाया ? यदि कोई मुझ से पूंछे "मनुष्यों को पहिचानने का क्या उपाय है ?" तो मैं कहूंगा "तुम उसके मित्रों को मालूम करो कि वे कौन हैं ? वह कैसे वातावरण में उठता बैठता घूमता है, उससे तुम्हें इसका सही अनुमान हो जायगा कि वह कैसा व्यक्ति है ?"

प्रत्येक मनुष्य को मित्रों की आवश्यकता है । तुम अपने जीवन में कुछ न कुछ व्यक्तियों से अधिक घनिष्टता का अनुभव करोगे । मित्र मनुष्य की सामाजिक आवश्यकता है परन्तु फिर भी ठीक ठीक मित्रों का चुनाव कर सकना कितना कठिन है—

> स्वाभाविकं नु यन्मित्रं भाग्ये नैबाभि जायते ।
> तद कृत्रिम सौहार्द मा पत्स्वपि न मुञ्चति ॥

जो स्वाभाविक मित्र है सो भाग्य ही से मिलता है और वह अकृत्रिम मित्रता को आपत्ति में भी नहीं छोड़ता।

आजकल यहाँ मच्छरों का बड़ा प्रकोप है। कल रात को बड़ी कठिनाई से नींद आई। जब जरा नींद आती थी तभी श्रीमान् मच्छरजी महाराज कान के पास अपना तम्बूरा लेकर 'भन भन' सुन्दर सङ्गीत को सुनाने लगता था और मौका पाते ही डंक मारकर उड़ जाता था। मैं हाथ फैंकता पर वह हजरत कहाँ हाथ आने वाले हैं? इन्हीं को लक्ष्य करके किन्हीं संस्कृत के साहित्य-कार ने लिखा है।

> प्रक पादयोः पदति खादति प्रष्ठ मांसं।
> कर्णे कलं किमवि रौति शने र्विचित्रम्॥
> छिद्रं निसत्य सहसा प्रवि शत्य शंकः।
> सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति॥

अर्थात खल के पूरे चरित्र को मच्छर प्रगट करता है पहिले चरण के आगे गिरता है फिर पीठ के मांस को खाता है। कान में कुछ विचित्र और मधुर बचन धीरे २ बोलता है। फिर छिद्र ढूंढ़ कर झटपट निशंक होकर बैठ जाता है।

> हीमते सिरनिस्तात हीनैं सहसमागमात्
> सवैच्ज समतामऐनि विशिष्टै श्च दिशिष्ट नाम

हे तात। नीच लोगों के साथ समागम से मति हीन होती है और समान लोगों के साथ समानता और विशेष लोगों के साथ विशेषता मिलती है।

तुम्हें मित्रों की तो अवश्य खोज है पर क्या तुम ऐसे मनुष्यों को अपना मित्र बनाना पसन्द करोगे जिनमे मच्छर जैसे गुण हों, जो तुम्हारे सामने तो तुम्हारी प्रशंसा करे, तुम्हें अपनी मीठी वाणी से मोहित कर लें पर मौका पाते ही तुम्हारे ऊपर धावा

बोल दें ? फिर भी दुनियां में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं है। कुछ स्वार्थी तुम्हें मित्र के नाते घेरने की कोशिश करेंगे इनसे सावधान रहना चाहिए।

मित्रता क्या है ? दो हृदयों का स्वाभाविक मिलन। मित्र खोजने से नहीं मिलते। किसी स्वार्थ को लेकर जो मित्रता होती है वह मित्रता नहीं होती। स्वार्थियों की मित्रता तो चपल बिजली की तरह होती है, स्वार्थ सध जाने पर मित्रता भी समाप्त हो जाती है। अनायास ही बिना किसी स्वार्थ के जो हृदयों का मिलन हो जाता है वही सच्ची मित्रता है।

राजनीतिक क्षेत्र में प्रायः मित्रता मिलना कठिन है। वहां आज के जो मित्र हैं कल के वही शत्रु होंगे और आज के जो शत्रु हैं कल के वही मित्र होंगे, ऐसा कहा जाता है। परन्तु भारतीय राजनीति में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहां एक मित्र ने दूसरे मित्र के लिए अपने सर्वस्व की आहुति चढ़ा दी। पुराने राजपूत राजाओं में पगड़ी बदलौवल की प्रथा जारी थी वे एक बार पगड़ी बदल कर जिसके मित्र हो जाते थे अन्तिम समय प्राण रहते तक अपनी मित्रता निबाहते थे। कौन सी ऐसी आहुति थी जो मित्रत्ता की बेदी पर वे नहीं चढ़ा सकते थे ? परन्तु पाश्चात्य ढंग ने राजनीतिक क्षेत्र में अपना रंग चढ़ा लिया है। अब राजनीतिक और व्यापारिक—आर्थिक आधार पर हुई मित्रता बहुत कम ठहर पाती है।

यदि तुम्हें एक सच्चा मित्र मिल जाय तो वह बहुत काफी है और यदि तुम्हें दो चार सच्चे मित्र मिल जांय तो फिर तुम जैसा भाग्यशाली दुनियां में कौन हो सकता है। मित्रों के चुनाव में बड़े सतर्क रहो। बुरे मनुष्यों का संग आग के ताप से भी अधिक दहकाने वाला होता है उससे बचो हरेक को अपना मित्र मत समझ बैठो।

तुम जितने महापुरुषों को देखोगे तुम्हें मालूम होगा कि वे मनुष्यों के पहिचानने में बड़े निपुण होते हैं। उनके मित्रों और सहयोगियों का चुनाव ही उनकी सफलता का कारण होता है। बुरे और तीसरे श्रेणी के मनुष्यों को लेकर दुनिया में किसने विजय प्राप्त की है?

बहुत बड़े और धनी आदमियों के पीछे मित्रता के लिए घूमना व्यर्थ है, वे अपने 'बड़प्पन' में इतने मगरूर हैं कि समान आधार पर उनसे मित्रता का होना कठिन है। धन मित्रता का बाञ्छनीय आधार तो नहीं हो सकता। प्रायः सामान परिस्थितियों के साथियों से मित्रता अधिक अच्छी और दृढ़ होती है।

यदि तुम्हें कुछ अच्छे मित्र मिल जांय तो इनकी मित्रता की रक्षा बड़े यत्न से करनी चाहिए। वह एक मूल्यवान सम्पत्ति से भी अधिक मूल्यवान है। कभी २ हम अपनी लापरवाही से अपने मित्रों को व्यर्थ ही ठेस पहुंचा देते हैं। एक बार हृदयों में अन्तर आ जाने पर उनका जुड़ना बड़ा कठिन हो जाता है। हमें अपने मित्रों के भावों की रक्षा करनी चाहिए और उनके प्रति कभी उदासीनता नहीं दिखलानी चाहिए! जिन लोगों की मित्रता फुटवौल की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर ठोकर खाती फिरती है उनकी मित्रता का कोई मूल्य नहीं है।

मित्रता में लेनदेन अथवा व्यौपार कभी न कभी मन मुटाव का कारण हो ही जाता है॥ इसलिए मित्रों में लेनदेन या व्यौपार का कार्य मत करो। हां! आवश्यकता पड़ने पर अपने मित्रों की आर्थिक सहायता करना तुम्हारा धर्म है परन्तु वह सहायता मित्र के नाते होनी चाहिए। तुम्हें आर्थिक सहायता उससे वापिस मिलने अथवा उसका बदला कभी मिलने के विचार से नहीं करना चाहिए। इससे निराश होने पर तुम्हें दुख भी न होगा। यदि कभी

व्यौपार या लेन देन करना ही पड़े तो वह बिलकुल साफ और स्पष्ट होना चाहिए।

तुम्हारे दिल में अपने मित्रों के मातापिता और उनके परिवार की महिलाओं के प्रति आदर और सम्मान का भाव होना चाहिए। तुम्हें उनके घर की स्त्रियों के प्रति ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि तुम स्वयं अपनी माता और बहिनों के प्रति करते हो।

मित्रों से सीधा और सरल व्यवहार रक्खो। बनावट और कृत्रिमता शीघ्र ही खुल जाती है और फिर उसकी प्रतिक्रिया होती है। कभी अपने मित्रों पर बड़प्पन या धन का रौब गालिब करने की कोशिश मत करो।

अपने मित्रों की कठिन परिस्थितियों में सहायता करना तुम्हारा धर्म है। समय पर जो अपने मित्रों के आड़े नहीं आता उस मित्रता को क्या कहें ? एक अँग्रेजी कहावत है A friend in need is a friend indeed (जो मित्र आवश्यकता के समय काम आता है वही सच्चा मित्र है) कृष्ण अपने मित्र अर्जुन का रथ हांकना जैसा छोटा काम करने से पीछे नहीं हटे। सुदामा और कृष्ण की कथा तो तुमने सुनी होगी सुदामा बहुत गरीब ब्राह्मण थे पर कृष्ण के बचपन के लगोटिया यार थे ? धनाभाव से अत्यन्त दुखी होने पर उनकी स्त्री ने उन्हें कृष्ण के पास जाने को विवश किया। ऐसे सुदामा के आने का समाचार जब कृष्ण को मालूम हुआ तो वे उन्हें लेने के लिए नंगे पैरों दौड़े उनकी पटरानियों ने उन्हें स्नान कराये और स्वयं उन्होंने उनके पैर धोकर पान किया। इन्हीं सुदामा के लिए कृष्ण ने सुदामापुरी का निर्माण किया। मित्रता का ये इससे अधिक उत्कर्ष उदाहरण और कहां मिलेगा। नहीं तो कहां कृष्ण और कहां 'बापुरो सुदामा'।

तुम्हारा पिता

———

पुस्तक और पत्रों का चुनाव

(१७)

प्यारे बेटे !

क्या तुमने लन्दन की 'ब्रिटिश म्यूज़ियम लायब्रेरी' की बाबत कुछ पढ़ा है ? यह ब्रिटिश साम्राज्य का सब से बड़ा पुस्तकालय है, यह मीलों वर्ग क्षेत्र में फैला हुआ है और इसमें पचासियों भाषाओं की लाखों पुस्तकें हैं। यहाँ बड़े-बड़े विद्वान जाकर भिन्न-भिन्न विषयों का अध्ययन करते हैं। उनके लिये वहाँ अनेक सुविधाओं की व्यवस्था है। कलकत्ते में भी एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है, उसकी पुस्तकों की सूची २० मोटी पुस्तकों में प्रकाशित हुई है। हिन्दी साहित्य का विकास हो रहा है, परन्तु उसमें न तो इतनी पुस्तकें ही हैं और न कोई ऐसा पुस्तकालय है, जहाँ हिन्दी साहित्य का पूर्ण संग्रह हो। काशी में नागरी प्रचारिणी सभा का अच्छा संग्रह है। संस्कृत का साहित्य बहुत विशाल है। हजारों वर्ष की हमारी इस पैतृक सम्पत्ति में अब भी ऐसे अनमोल हीरे छिपे हैं, जो किसी अन्य भाषा में नहीं हैं। आज भी सहस्रों और लाखों भी—संस्कृत और पाली भाषाओं के ताम्र-पत्र और हस्तलिखित पुस्तकें हमारे देश में इधर-उधर फैली हुई हैं, जिनका स्वरक्षित संग्रह करके कुछ स्थानों पर केन्द्रीयकरण करने की बड़ी आवश्यकता है। हमारी हजारों

संस्कृत और पाली भाषा की पुस्तकें जर्मनी, इङ्गलैंड, अमरीका, तिब्बत, चीन, जापान में चली गई हैं। जर्मनी ने तो हमारी कितनी ही पुस्तकों को अपने यहाँ से प्रकाशित किया है और उनके वे संस्करण बड़े शुद्ध और प्रमाणित माने जाते हैं।

विभिन्न भाषाओं का इतना विशाल साहित्य ? इसे कोई यदि पढ़ने बैठे और जीवन भर निरन्तर पढ़ता ही रहे, यदि वह दो-सौ पृष्ठ प्रति दिन भी पढ़े तो अपने जीवन में वह पाँच-सात हजार पुस्तकों से ज्यादा नहीं पढ़ सकता। हमारी शक्तियाँ कितनी परिमित है ? जीवन भर व्यतीत कर देने पर भी हम लन्दन के पुस्तकालय का एक कोना भी नहीं पढ़ सकते।

मुद्रणकला के प्रचार से अधिकाधिक पुस्तकें छप रही हैं, अँग्रेजी में हर विषय की सैकड़ों और हजारों पुस्तकें छप चुकी हैं। हिन्दी में बीमा विषय की कोई उपयुक्त पुस्तक मेरी दृष्टि में नहीं आई पर अँग्रेजी में इस विषय की हजारों ही पुस्तकें हैं। हर प्रवृत्ति, हर व्यवसाय की वहाँ ढेरों पुस्तकें हैं। विज्ञान, कला, साहित्य, व्यौपार, अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास, भूगोल, भू-गर्भ, गृह-निर्माण, यात्रा आदि सैकड़ों विषयों की पुस्तकें छप चुकी हैं। हिन्दी साहित्य में भी अब पुस्तकों की संख्या बढ़ रही है, इनमें अच्छी भी हैं, बुरी भी हैं। कुछ पुस्तकें उपयुक्त व्यक्तियों द्वारा लिखी गई हैं और कुछ अनाधिकारी व्यक्तियों ने भी पुस्तकें लिखकर खपा दी हैं। कुछ समय हुआ साहित्य शौक और यश की वस्तु बन गया था। कुछ लोग यश कमाने और शौक के लिये पुस्तकें लिखते थे। हर मनुष्य में दूसरों को उपदेश करने की एक कमजोरी होती है और अब तो साहित्य व्यवसाय की चीज बन गया है। आय और जीविका के लिये पुस्तकें लिखना इस युग की देन है। पैसा कमाने के लिये पुस्तकें लिखवाई जाती हैं और छापी जाती हैं। दुनियां में कोई भी

चीज बिलकुल अच्छी या बिलकुल खराब नहीं है। मुद्रणकला का भी अपने गुण और दोषों सहित विकास हो रहा है।

पुस्तकों की तरह योरुप और अमरीका में हर विषय के पत्र और पत्रिकाएँ भी निकलती हैं। इनके बड़े संगठन हैं और इनमें से अनेकों की तो ग्राहक संख्या लाखों में पहुँचती है। यह पत्र पत्रिकाऐं भी व्यवसाय के आधार पर निकाली जाती हैं। आजकल की दुनियां में समाचार पत्रों की एक बड़ी शक्ति है, उनके जरा से इशारे से बड़ी-बड़ी सरकारों के तख़्ते पलट जाते हैं। अनेक दूसरे व्यवसायों की तरह आज इन पत्रों के मालिक भी विशाल सम्पत्ति के स्वामी बन गये हैं।

जब हम पुस्तक और पत्रों के इस अपरिमित प्रवाह को देखते हैं तो हमारा दिमाग़ परेशान हो जाता है कि हम क्या पढ़ें? इनमें से अनेक पुस्तकें और पत्र तो इतने गन्दे होते हैं कि उनके कीटाणु मस्तिष्क में प्रवेश कर हमारे जीवन को ही नष्ट कर देते हैं। इनमें से कुछ तो नैतिकता से बहुत दूर होती है, बुरे विचारों को उत्तेजना देना, पैसे ऐंटना ही इनका काम होता है। अनेक मासिक पत्र ऐसे प्रकाशित होते हैं जिनमें गन्दे और अश्लील चित्र छाप कर लोगों की दुष्प्रवृत्तियों को जागृत करके उनमें अफीम की तरह चिपक जाना ही उनका काम होता है। वे भीतर ही भीतर समाज की शक्तियों को खाकर उसे खोकला कर देते हैं।

जो पुस्तक सामने आवे उसको ही पढने लगना एक प्रथम श्रेणी की बेवक़ूफ़ी है। आजकल नवयुवकों में कहानियों और गन्दे उपन्यासों का बड़ा प्रचार है। नवयुवकों का उनमें चित्त लगता भी खूब है। हर स्टेशन के स्टाल पर ऐसी ही तीसरी श्रेणी की पुस्तकें भरी पड़ी हैं। यह समाज के लिए विष हैं।

तुम्हें पुस्तकें पढ़ने का तो बहुत शौक है, तुमने लड़कों के लिये एकबार पुस्तकालय भी खोला था पर कभी तुमने यह भी सोचा कि कैसी पुस्तकें पढ़नी चाहिये। पुस्तकें एक मनुष्य की सबसे अच्छा मित्र है और पत्रों के बिना आज किसी मनुष्य का ज्ञान पूर्ण नहीं नहीं कहा जा सकता। इनका पढ़ना जितना आवश्यक है उतना ही इनका चुनाव कठिन है। तुम्हें चाहिये कि इस सम्बन्ध में अपनी एक योजना बनाओ, इसमें तुम्हें अनुभवी और विद्वान व्यक्तियों से सहायता लेनी चाहिये। जिस विषय में तुम्हारा झुकाव हो उस विषय के अच्छे विद्वानों से परामर्श करके पुस्तकों का चुनाव करना चाहिये।

स्मरण रक्खो! संसार केवल पुस्तकें पढ़ने के लिये ही नहीं है। संसार कर्म क्षेत्र है और पुस्तकें उसमें मार्ग प्रदर्शन का काम कर सकती हैं। किताबी कीड़े दुनियां में क्या कर सकते हैं? परन्तु फिर भी जीवन का ऐसा कौन सा भाग है जब हम पुस्तकें पढ़े बिना रह सकते हैं? हमें जीवन के अन्तिम पल तक कुछ न कुछ पढ़ते रहना चाहिये। हम अपने जीवन में बहुत कम पुस्तकें पढ़ सकते हैं इस लिये हमें केवल प्रथम श्रेणी की पुस्तकें ही पढ़ना चाहिये।

हर व्यक्ति के पास अपना एक छोटा पुस्तकालय होना आवश्यक है। उसमें उसे अपनी अत्यन्त प्रिय और आवश्यक पुस्तकें चुन-चुन कर रखना चाहिये। हम प्रायः पुस्तकें तो बहुत खरीदते हैं पर उनको अच्छी तरह नहीं रखते। पुस्तकें प्रायः उधार नहीं देना चाहिये और अगर दें तो समय पर उन्हें वापिस मँगा लेना चाहिये। स्वयं भी यदि कोई पुस्तक किसी मित्र से माँगो तो समय पर ही सावधानी से वापिस कर दो। भारतवासी इस सम्बन्ध में बड़े लापरवाह होते हैं परन्तु यह अच्छी आदत नहीं है।

पुस्तक ठीक तरह उपयुक्त स्थान पर और सख्याबद्ध करके

रखना चाहिए। उसकी सूची अवश्य बनाकर रक्खो और किसी को कोई भी पुस्तक उधार दो तो एक कापी पर नोट करलो। पुस्तकों की समय समय पर मरम्मत करना आवश्यक है। यह ध्यान रक्खो कहीं उनमें कीटाणु लगकर उन्हें न खा जांय। कुछ अच्छे पत्र एक दो-मंगाना भी आवश्यक है। समय पर उनकी जिल्द बंधवा कर फ़ाइल बनवा लेनी चाहिए।

परन्तु तुम भारी आवश्यक पुस्तकें और पत्रिकाएँ नहीं खरीद सकते। इसके लिए तुम्हें किसी पुस्तकालय का सदस्य बन जाना चाहिए। कुछ पुस्तकालय बाहर भी पुस्तकें भेजती हैं जैसे कलकत्ते का पुस्तकालय। इनके नियम मंगा कर पढ़ने चाहिए और आवश्यक हो तो इनका सदस्य बन जाना जाना चाहिए।

पुस्तकों को हम कई श्रेणियों में बांट सकते हैं। कुछ पुस्तकें केवल सरसरी तौर पर पढ़े जाने की ही होती हैं, कुछ पुस्तकें ध्यान से पड़ने और समझने की होती हैं और कुछ पुस्तकें बार बार पढ़कर मनन करने स्मरण करने और हज़म करने की होती है। कुछ पुस्तकें एक वार पढ़ने के बाद व्यर्थ हो जाती है परन्तु कुछ पुस्तकें ऐसी भी हो सकती हैं जो सदैव अपने पास रखने और सयय समय पर आवश्यक चीज़ों को देखने की होती है। कुछ पुस्तकें पाठ करने की होती हैं।

पुस्तकों और पत्रों का चुनाव और योजना बनाने के बाद प्रश्न यह उठता है कि हम उनका अच्छी से अच्छी प्रकार उपयोग किस तरह कर सकते हैं। विद्यार्थी काल में तो हम अधिक समय पुस्तकों के अध्ययन में बिता ही सकते हैं, व्यवहारिक जीवन में प्रवेश कर जाने पर भी हमें प्रति दिन कुछ न कुछ समय अवश्य व्यय करना चाहिए। यदि पुस्तकों, समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के पढ़ने में यदि हम दो घन्टे प्रति दिन व्यय करें तो वह हमारे

निरन्तर विकास के लिए पर्याप्त है। इसमें प्रति दिन यदि हम पुस्तक अध्ययन में व्यतीत करें तो हम एक साधारण बड़ी पुस्तक एक सप्ताह में पढ़ लेंगे। चार पुस्तकें प्रति मास बहुत पर्याप्त हैं।

जो पुस्तकें केवल हलके वाचन के दिए होती हैं जैसे कहानिमां उपन्यास, यात्राओं, के बर्णन आदि शीघ्र पढ़ कर छोड़ दिए जाते हैं परन्तु जो मनन करने योग्य पुस्तकें हैं उन्हें ध्यान से पढ़ने की आवश्यकता होती है। प्रायः यह देखा जाता है कुछ लोग पढ़ते तो पर उनमें हजम करने की शक्ति बहुत कम होती है। पुस्तक पढ़ने के बाद फिर मस्तिष्क स्लेट की तरह धुल जाता है। ऐसे पढ़ने से क्या लाभ

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर कार्ल शोर का मत है साधारण मनुष्य अपनी यथार्थ प्राप्त स्मरण शक्ति का दस प्रतिशत से अधिक कार्य में नहीं लाता। वह स्मरण करने के स्वाभाविक नियमों की अवहेलना कर उसका ६० प्रतिशत व्यर्थ कर देता है।''

स्मरण करने के स्वभाविक दो नियम हैं (१) मस्तिष्क पर हम जो पढ़ते हैं उसका अङ्कन (२) उसका दोहराना और उसका क्रम-वद्ध करना। हम जो चीज पढ़ते हैं वह पीछे हमारे दिमाग़ पर अंकित होती है। जब हम उन बातों को स्मरण करते हैं तो हम उनके अङ्कित शब्दों की ओर दोहराते हैं और हमारा मस्तिष्क उनको क्रम वद्ध करके हमारे सम्मुख उपस्थित कर देता है।

स्मरण शक्ति को बढ़ाने का सबसे प्रथम नियम यह है कि हम जिन वस्तुओं को स्मरण रखना चाहते हैं, उनको मस्तिष्क पर अच्छी तरह अंकित कर लें यानी उसको ध्यान से पढ़ें। अमरीका के प्रेसीडेण्ट रुजवेल्ट का नाम तो तुमने सुना है। आजकल जो रुजवेल्ट प्रेसीडेण्ट हैं उनसे एक दूसरे रुजवेन्ट भी प्रेसीडेण्ट हो चुके हैं उनकी स्मरण शक्ति का रहस्य ही यह था कि वे जिस चीज को स्मरण

रखना चाहते थे उस बात की ओर वे अपना ध्यान केन्द्रित कर देते थे। जिस दृश्य को तुम स्मरण रखना चाहते हो उसे ध्यान से देखो। किसी भी केमरे में, यदि उसके लेन्स को पूरी तरह केन्द्रित नहीं किया जायगा तो तस्वीर साफ नहीं आयगी। इसी तरह मस्तिष्क के केमरे में उस दृश्य का फोटो स्पष्ट अंकित न होगा, यदि उसे ध्यान से न देखा जाय। बहुत सी चीजें हमारे सामने आने पर भी यदि हमारा ध्यान दूसरी ओर हो तो हम उन्हें नहीं देखते क्योंकि उधर हमारे दिमाग के केमरे में फोक्स ही नहीं आता इसी तरह जो चीजें सरसरी तौर पर देखी जाती हैं वे भी अपना अक्स बहुत क्षणिक छोड़ जाती हैं।

स्मरण रखने का एक और नियम है कि जो बात याद रखना चाहते हो वह एक से अधिक इन्द्रियों से उन्हें याद करो। जैसे जोर जोर से पुस्तक पढ़ने से न केवल नेत्र वरन कर्णेन्द्रिय पर भी उनका असर पड़ता है। अमरीका का एक महापुरुष जिस बात को याद रखना चाहता था वह उसे जोर २ से पढ़ना चाहता था ताकि नेत्रों के अतिरिक्त कर्णेन्द्रियों द्वारा भी उसको ग्रहण कर सके।

जो चीज तुम देखते हो सुनने से मस्तिष्क को अधिक प्राप्त होती है। सुनने से देखने वाली वस्तु बीस गुनी अधिक याद रहती है।

स्मरण शक्ति का दूसरा नियम है उसे कई बार दोहराओ। एक बार जिसको पढ़ने से हलका निशान पड़ता हैं वही बार बार पढ़ने से उसके मस्तिष्क पर चिन्ह स्पष्ट और स्थायी हो जाते हैं। जिस बात को तुम मुँह जबानी याद रखना चाहते हो उसे दस दस दफा तीन दिन ध्यान से पढ़ो। साधारण स्मरण शक्ति वाले को भी इसी तरह तीस बार पढ़ने से वह वाक्य या श्लोक जबानी याद हो जायगा। रटने से पहले यह पद्धति अच्छी है।

स्मरण करने की तीसरी क्रिया क्रम-बद्ध करना है। हमारे मस्तिष्क में हजारों घटनाओं और दृश्यों के चित्र अंकित हैं, उनको क्रमबद्ध करके फिर दोहराना ही तीसरा नियम है। इसके उचित विकास के लिए जब तुम स्मरण करो तो उसे अच्छी तरह समझ लो। ऐसा क्यों है ? यह ऐसा कब है ? ऐसा कहां है ? किसने कहा कि ऐसा है ? आदि इस तरह तुम्हारे मस्तिष्क में वह घटना बड़े क्रम से अंकित होगी और क्रम से ही तुम उसे दोहरा सकोगे।

तारीख और वर्ष स्मरण रखना बड़ा कठिन होता है। परन्तु तुम्हारे जीवन में अनेक घटनायें ऐसी होती हैं जिनकी तारीखें तुम्हें स्वयम् अनायास ही याद रह जाती हैं। इसी तरह राष्ट्र के जीवन में भी कुछ तारीखें ऐसे होती हैं जिन्हें याद करने के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता, जैसे जलयान वाला बाग १३ अप्रेल सन् १६१६ को हुआ, वर्त्तमान विश्व युद्ध सितम्बर सन् १६३६ को प्रारम्भ हुआ, पर अन्य दूसरी घटनाओं की तिथि तुम इस तरह याद नहीं रख पाते, परन्तु यदि तुम इनकम महत्व पूर्ण घटनाओं को इन अधिक महत्वपूर्ण घटनाओं से जोड़ लो तो तुम्हें इनकी तारीखें बड़ी जल्दी याद हो जाँयगी। जैसे विश्वयुद्ध छिड़ने के पांच दिन बाद तुम देहली गए तो तुम्हें मालूम करते देर न लगेगी कि उस दिन सितम्बर सन् १६३६ था जब तुम देहली गए थे।

अन्त में मैं तुम्हें यह याद दिला देना आवश्यक समझता हूँ कि केवल पुस्तकें पढ़ने से या अधिकतर किताबों के अध्ययन से ही किसी मनुष्य के चरित्र का निर्माण नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य को जो भी काम उसके जिम्मे हो, विश्वास और अविकल परिश्रम से करना चाहिए। तुम्हारा भी यही कर्त्तव्य है और तुम्हें सदैव

सिपाही की भांति कठिन परिस्थितियों का सामना करना है। एक आदमी पढ़ने से अधिक काम करके कुशल बनता है। लेकिन वह आदमी सबसे चतुर और कुशल होते हैं जो इन दोनों की सहायता से आगे बढ़ते हैं। याद रक्खो! कि इस दुनियां में वही व्यक्ति उन्नति कर सकता है जो अपने नियत काम को मेंहनत और दिलेरी से करता है और भविष्य में महान कार्य करके की पृष्ठ भूमि निर्मित करता है।

तुम्हारा पिता।

———

हमारा पारिवारिक जीवन

(१८)

प्यारे बेटे,

तुमने किसी अजायबघर में कभी कोई बनमानुष देखा है। चिम्पेञ्जी और गुरिल्ला इनकी दो जातियाँ अफ्रीका के जंगलों में पाई जाती हैं। यदि तुम कभी उन जंगलों में पहुंच जाओ और उनके पारिवारिक जीवन को देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि वह बड़ा ही सुखी और आनन्दमय है। वे जोड़ा मिलाकर रहते हैं और अपने बच्चों की रक्षा मनुष्यों की तरह ही बड़े होने तक करते हैं। वे पेड़ों की डालियों को झुकाकर एक चबूतरा सा बना लेते हैं। जिस पर वे पत्तों और नरम डालियों से एक शय्या बना लेते हैं। इस पर माता अपने बच्चों सहित विश्राम करती है और नर गुरल्लिा पेड़ के नीचे भूमि पर झाड़ झंखाड़ इकट्ठा करके उस पर बैठा रहता है और रात के समय वह अपने परिवार की चौकीदारी करता है। यदि जरा भी खटका हो तो आक्रमण करने के लिए प्रस्तुत रहता है। ब्रिटेन के एक शिकारी ने लिखा है कि इनमें सन्तान प्रेम के अतिरिक्त और भी ऐसी बातें हैं कि जिनमें से बहुत कुछ हमारे ही समान हैं। एक समय यह शिकारी अपने साथियों के साथ गोरिल्लों के एक परिवार के

सामने आ पड़ा। इन्हें देख कर एक बूढ़े सफेद बाल वाले नर गोरिल्ला को छोड़ कर बाकी सब प्राणी भाग गये। गोरिल्लों का यह वृद्ध सरदार भागने वालों को बचाने की इच्छा से शिकारियों का विरोध करने को आगे बढ़ा और वीरता से तब तक सामना करता रहा जब तक कि वह उनकी बन्दूक की गोली का निशान न बन गया। मनुष्य के सर्वोच्च गुण या विशेषताओं—प्रेम, लगन और साहस का इससे बढ़ कर और कौन सा उदाहरण हो सकता है?

(हिन्दू विश्व भारती)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और प्रारम्भ ही से सहयोग और पारिवारिक जीवन पर ही उसकी उन्नति का आधार स्थापित हुआ है। विकास-वादियों का कहना है कि मनुष्य जब जंगली अवस्था में घूमता था तभी उसमें पारिवारिक जीवन के अंकुर जग चुके थे और पारिवारिक जीवन का वृक्ष फूलते फलते हमें वर्त्तमान आधुनिक सभ्यता के युग में ले आया है।

आर्य सभ्यता में पारिवारिक जीवन का आदर्श पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र ने हमारे सामने रक्खा है। रामायण एक ऐसी पुस्तक है, जिसका पारिवारिक जीवन का सा उच्च आदर्श हमें संसार की किसी भी पुस्तक या जीवन चरित्र में नहीं मिलता। इस पुस्तक के सभी पात्र, राम, लक्ष्मण, भरत, कौशल्या, सीता, हनूमान आदर्श व्यक्ति हैं। राम जैसा आज्ञाकारी पुत्र संसार के इतिहास में दूसरा कहां है जो पिता की आज्ञा के लिये चक्रवर्ती राज्य को लात मार कर देता? यदि वह मुगल सम्राट औरङ्गजेब होता या इङ्गलैंड का बादशाह चार्लस होता तो कहता "मैं ज्येष्ठ पुत्र हूँ, राजा होने का अधिकार मेरा है, पिता दशरथ होते कौन हैं? अगर वह विषयान्ध होकर यह अनीति करने को तत्पर हुए हैं तो मैं उन्हें

शाही कैदखाने में बन्द कर उनका दिमाग दुरुस्त कर दूँगा।"
लक्ष्मण झटपट राजा दशरथ को वध करके भी राज्य को अपने वश में (oup d'etat) करने की सम्मति देते हैं पर राम यही कहते हैं "हे लक्ष्मण, तुम्हारे स्नेह को मैं जानता हूँ। इस अनार्य वृत्ति को दूर करो'।

सीता जैसी पति-परायण, पवित्र और पतिव्रता पत्नी विश्व के इतिहास में और दूसरी कौन है? वह पति के साथ २ राज पाट छोड़ कर जंगल २ खाक छानती फिरती हैं और कहती हैं 'जहां देव हैं, वहीं मुझे सुख है, वहीं सम्पत्ति हैं।' चौदह वर्ष बनवास की अत्यन्त कठिन यन्त्रणाओं को सह कर भी वे जब लौट कर आती हैं और राम का राज्याभिषेक होता है तो कुछ दिनों बाद प्रजा के अपवाद के भय से फिर वे उन्हें जंगल में बाल्मीकि के आश्रम में भेज देते हैं। इस कठोरता पर भी सीता के पति प्रेम में अन्तर नहीं आता।

भरत और लक्ष्मण जैसे आदर्श भाई राज्य को फुटबॉल की तरह ठोकर से मार कर भ्रातृ-प्रेम की प्रबल और स्वच्छ धारा प्रवाहित करते हैं। राम यदि बन में हैं तो भरत भी अयोध्या से बाहर रह कर तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने यथार्थ ही कहा है :—

जो न जनम जग होत भरत को।
सफल धरम पुरी धरणि धरत को॥

लक्ष्मण जैसे देवर जो सीता के आभूषण प्राप्त होने पर और राम के पूछने पर कि क्या लक्ष्मण उन्हें पहचानते हैं, लक्ष्मण कहते हैं, 'हे देव! ये सिर के आभूषण ता मैं पहिचानने में असमर्थ हूँ, क्योंकि मैंने कभी उनके मुख की ओर देखा ही नहीं। हां! उनकी पद बन्दना करते समय जब उनके चरणों में माथा टेकता था तब

मैं उनके पैर के बिछुए अवश्य देखता था, यदि वह होते तो मैं उन्हें अवश्य पहिचान लेता"।

पारिवारिक आदर्श और स्फूरण प्राप्त करने के लिए तुम रामायण को जितना ही पढ़ो उतना ही अच्छा है। हमारा परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति कुछ न कुछ कर्त्तव्य है और उसका हमें पूरी तरह पालन करना चाहिए। जो व्यक्ति मानव प्रेम और मानव कल्याण की लम्बी २ बातें तो करता है परन्तु अपने पारिवारिक जीवन में जो अपने कुटुम्बियों के प्रति अपने कर्त्तव्यों की अवहेलना करता है वह पाखण्डी है। यदि तुम किसी व्यक्ति के व्यवहारिक और वास्तविक रूप को देखना चाहते हो तो तुम उसके कुटुम्बियों और पड़ोसियो के प्रति किये गये उसके व्ययहार को देखो।

तुम्हारा पिता।

———

व्यवहारकुशल बनो

(१६)

प्यारे बेटे,

आज हम एक संघर्ष के युग से गुजर रहे हैं ; मैं जब आज विश्व में होने वाले भीषण रक्तपात की बात सोचता हूँ तब मैं उद्विग्न हो उठता हूं, हजार हजार वायुयान लाखों टन प्रलयकारी विस्फोटक पदार्थ निरीह जनता—स्त्री और बच्चों, दीन और दुखी परिवारों पर वायु से उग्र मृत्यु के रूप में फेंक रहे हैं, जहां कुछ समय पूर्व बच्चों की चहल पहल, स्त्रियो का मृदुल हास्य सुन पड़ता था वहां अब करुण-क्रन्दन और चीत-कार सुनाई पड़ता है। जहाँ पहिले एक 'गुलनार' मुहल्ला था वहाँ है अब मिट्टी का ढेर। जब यह मृत्यु के दूत इस अग्निकाण्ड को करके लौटते हैं तो लाखों जनता उनके स्वागत के लिए उमड़ पड़ती है, उनकी ज्वलन्त देशभक्ति और वीरता के लिये लच्च लच्च तालियां बज उठती हैं। कैसी है यह दुनियां जहाँ हम रहते हैं।

हमारा जीवन भी एक संघर्ष है, इस संघर्ष के अनेक पहलू हैं। तुम वायु से विस्फोटक पदार्थों द्वारा निरीह जनता को बरबादी को तो कभी पसन्द नहीं करोगे पर क्या तुमने कभी यह

भी सोचा है कि हम अपने जीवन में अपने व्यवहार और बातचीत से कितने लोगों के जीवन में यन्त्रणा—दुःख—कटुता पैदा करते हैं? यह दुनिया एक विशाल 'कर्म-यन्त्र' है, हम इसके छोटे २ पुर्जे हैं, इन छोटे २ पुर्जों के संघर्ष से ही यह सारी मशीन चल रही है। इन पुर्जों में आपस में संघर्ष करते २ गर्मी पैदा हो जाती है, अग्नि की चिनगारियां उठने लगती हैं और आपस में टकराने से कर्कश आवाज पैदा होती है। यदि इन पुर्जों में उस समय भी तेल नहीं दिया जाय; तब? यह संघर्ष अधिक उग्र रूप धारण करके मशीन को नष्ट कर देंगे।

हमारे जीवन में तैल क्या है? भगवान कृष्ण ने इसे 'योगः कर्म सुकौशलम' कहा है यानी यह वह योग है जो हमें कर्म करने का कौशल बताता है। जीवन संघर्ष में जुटे रह कर भी हम अपनी व्यवहार कुशलता के कारण इस संघर्ष की जटिलता—कटुता को कम कर सकते हैं। हम इस चिकनाहट से अपने व्यवहार के खुरदरेपन को दूर कर उसकी विषमता को कम कर सकते हैं।

जीवन में संघर्ष तो आवश्यक है, संघर्ष के बिना दुनिया दुनिया नहीं रह सकती है। आखिर जीवन-संघर्ष से भागोगे कहां? कुछ लोग दुनिया छोड़ कर जंगलों में भागते हैं पर जीवन-संघर्ष उनका पीछा वहां भी करता है। हां! संघर्ष करते हुए हम उसकी अनावश्यक कटुता को कम कर सकते हैं, उस संघर्ष में भी चिकनाहट पैदा करके उसे सरस बना सकते हैं।

हम कभी २ तनिक सी नीति से बड़े २ झञ्झटों और झगड़ों से बच सकते हैं; तनिक सी सावधानी से हम अनेक हृदयों को ठेस पहुंचाने से बच सकते हैं, तनिक सी व्यवहार कुशलता से अपने कर्म में जीवन पैदा कर सकते हैं।

परन्तु यह स्मरण रक्खो व्यवहार-कुशल होने के लिए बनावट

या मक्कारी की आवश्यकता नहीं है। क्या इन पत्रों में व्यवहारिक नीति के सम्बन्ध में मैं तुम्हें जो लिखने जा रहा हूँ, वह मक्कारी की कला है? इसमें सन्देह नहीं हम आज की दुनिया में मक्कारी और बनावट का बोलबाला देखते हैं। हमारा अनुमान यह हो चला है कि जिस दुनिया से हम गुजर रहे हैं, वहां सफलता के लिए मक्कारी, ऐय्यारी और बनावट के बिना काम नहीं चल सकता। हम इस कला में जो निपुण हैं, उन्हें शीघ्र सफल होते भी देखते हैं। पर क्या कभी हमने यह भी सोचा है कि क्या यह सफलता स्थायी है? एक बार तुम अपनी साख के बल पर नकली सिक्के को भी चला सकते हो पर यदि तुम नकली सिक्के चलाने के आदी हो तो तुम एक दिन पकड़े जाओगे और तुम्हारी सारी साख मिट्टी में मिल जायगी। फिर तो लोग तुम्हारे असली सिक्के को भी सशंकित दृष्टि से देखेंगे। उस समय तो तुम्हारी सफलता भी असफलता में परिणित हो जायगी। यहां एक सज्जन हैं आवश्यकता से अधिक मिष्टभाषी हैं पहली ही मुलाकात में गले से गला मिला कर चलने वाले, मुँह के सामने प्रशंसा करने लगें तो तुम्हारी प्रशंसा के पुल बांध दें, पर थोड़े ही दिन बाद मैंने देखा कि उनके लोग अधिक खिलाफ होते जाते हैं, लोग जब उनसे मिलते हैं तो ऊपर से टीप टाप सब ठीक है लेकिन उनके जाते ही उनका सब मजाक उड़ाने लगते हैं। कारण? कारण उनका व्यवहार नकली सिक्के की तरह था और अब वह नकली सिक्का लोगों की निगाह में आ चुका था।

अपने असली सौदे को एक चतुर दुकानदार की तरह सुन्दर ढङ्ग से ग्राहकों के सामने पेश करना दूसरी चीज है। असली जवाहरात से जटित सोने की चीजों को भी धूल और रेत में भोंड़ी तरह से ग्राहक को दिखाने वाले जौहरी को कौन बुद्धिमान

कहेगा ? काँच के टुकड़ों को असली हीरा कह कर बेचना और बात है और असली हीरे को रेती से रगड़ २ कर और उस पर इस तरह पालश करके कि उसकी खूबसूरती कई गुना बढ़ जाय और बात है।

मैं तुमसे जब व्यवहार-कुशल होने की बात कहता हूँ तो मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि तुम जौहरी बनो जो कांच के टुकड़ों को असली हीरा करके बेचता है, न मैं तुम्हें ऐसा फूहड़ जौहरी बनाना चाहता हूँ जिसके असली हीरे को भी भोंड़े तरीकों की वजह से कोई असली हीरा स्वीकार नहीं करता। मैं तो तुम्हें ऐसा जोहरी बनते देखना चाहता हूँ जो अपने असली हीरे को इस तरह सुन्दर बना कर प्रस्तुत करे कि उसका मूल्य अधिक बढ़ जाय।

अनेक मनुष्य बड़े सच्चे और सुहृदय व्यक्ति होते हैं परन्तु अपने व्यवहार से वे दूसरों के दिलों में बड़ी गलत फहमी पैदा कर देते हैं। आखिर हर समय किसी का दिल चीर कर तो नहीं देखा जा सकता ? ऐसे मनुष्यों में अमृत लबालब भरा है पर उसकी एक घूंट से भी दूसरे व्यक्ति महाम रह जाते है। खुशामद नकली सिक्का है पर दूसरे मनुष्यों के वास्तविक गुणों की प्रशंसा करके उसे उत्साहित करना बुरा नहीं है। आत्म-प्रशसा सुनना मनुष्य की एक कमजोरी है, जिसके शिकार होने से बहुत कम लोग बच पाते हैं, यह ही झूंठी प्रशंसा खुशामद है और नकली सिक्के की तरह त्याज्य है परन्तु मनुष्य के वास्तविक गुणों की प्रशंसा करके उसे उन गुणों की ओर उत्साहित करना न तो खुशामद ही है और न बुरा ही है। हम सच्ची प्रशंसा से मनुष्य की इस कमजोरी से भी मानव समाज का कल्याण कर सकते हैं।

इसी तरह बनावटी सहानुभूति दिखलाना दूसरी बात है और हार्दिक सहानुभूति की भावना रखना और उससे प्रेरित होकर कार्य करना दूसरी चीज है। मधुर-भाषी होना मनुष्य का अमूल्य गुण है परन्तु हृदय में हलाहल भरा हो और जिह्वा पर मधु हो तो समाज के लिए यह उस विष से भी खतरनाक है, जो पीते समय कटु होने के कारण मनुष्य को इसके समझने का तो अवसर देता है कि वह विष पान कर रहा है।

मनुष्य के कार्य क्षेत्र में 'व्यवहार नीति' का एक बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। हमारी धर्म पुस्तकों में स्थान स्थान पर इस नीति का विवेचन किया है। विद्यार्थियों के लिए 'पञ्च तत्व' 'हितोपदेश' 'विदुरनीति' शुक्रनीति' आदि संस्कृत में अच्छी पुस्तकें हैं। अङ्गरेजी में इस सम्बन्ध में बहुत सा साहित्य है। इनमें से एक पुस्तक डेल कारनेगी लिखित 'हाऊ टू विन फ्रेन्ड्स एण्ड इन्फ्लुऐन्स पीपिल' मैंने जेल में सन् १९४१ में पढ़ी थी और मुझे पसन्द भी आई थी। मैं चाहता हूं कि हमारे नवयुवक उसकी कुछ अच्छी बातों को व्यवहार में लावें परन्तु यह पुस्तकें ज्यों की त्यों हमारे लिए उपयोगी नहीं हैं, यह पुस्तकें पाश्चात्य देशों की परिस्थितियों और संस्कृति की दृष्टि से लिखी गई हैं। हमारी संस्कृति और परिस्थितियाँ भिन्न हैं परन्तु फिर भी इनकी बहुत सी बातें उचित परिवर्तन के साथ हम ले सकते हैं। मैं आगे अपने पत्रों में कहीं २ उनका भी जिक्र करूँगा।

जीवन की फिलासफी को समझ लेने के बाद भी हमें अपने विचारों को कार्यरूप में परिणित करने के लिए "व्यवहार नीति" की सहायता लेने की बड़ी आवश्यकता पड़ती है।

तुम्हारा पिता।

मधुर हास्यरस का वातावरण लेकर चलो

(२०)

प्यारे बेटे,

दुनियां के इस विशाल यात्रा क्षेत्र में अनगिनती यात्री अपनी लाठी टेकते हुए आगे बढ़ते चले जा रहे हैं, इनमें कुछ के पीछे भांड़ की भीड़ चली आ रही है, वह एक विशाल जन समूह है, हास्य के मधुर स्रोत से ओत-प्रोत है, उनकी यात्रा सुखद है। इसके विपरीत हम अनेक व्यक्तियों को अपने पथ पर एकांकी, नीरव, सुस्त और ज़ीवन रहित उदासी में लड़खड़ाते हुए ज्यों त्यों बढ़ते हुए देखते हैं। आखिर इस भिन्नता का कारण क्या है? क्यों कुछ व्यक्ति जहां पहुँचतें हैं, वहां भीड़ की भीड़ उनका स्वागत करती है, सैकड़ों मनुष्य उनसे सहयोग करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। और क्यों अनेक मनुष्य जहाँ वे पहुँचते हैं वहां लोग एक एक करके खिसकना प्रारम्भ कर देते हैं, उनके साथ कोई मनुष्य कार्य करना पसंद नहीं करता, उन्हें अपनी यात्रा निर्जन स्थान में ही करने को विवश होना पड़ता है? कहने की आवश्यकता नहीं है कि पहले प्रकार के लोगों को सफलता प्राप्त करने के अधिक अवसर प्राप्त है और दूसरे प्रकार के लोगों को यात्रा कठिन और दुष्कर है।

सर्व प्रि। कौन नहीं बनना चाहता ? लाखों करोड़ों व्यक्ति सर्व-प्रिय बनने के असफल प्रयत्न में लगे हुए हैं। वे सब चाहते हैं कि वे जहाँ जाँय चुम्बक की तरह अन्य व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करें। पर चुम्बक का सा आकर्षण कितने व्यक्तियों को प्राप्त होता है ? इस आकर्षण के रहस्य को खोज निकालना 'ऐवरेस्ट' की चोटी की खोज से कम महत्वपूर्ण नहीं है। जो इस रहस्य को खोजने समर्थ में हैं फिर उनके सामने 'सोने की कान' की खोज का क्या मूल्य है ?

तुम पूँछोगे चुम्बक जैसा आकर्षक व्यक्तित्व कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? मैं तुम्हें इसके पाँच नियम बताना चाहता हूं, यह निम्न प्रकार हैं—

(१) मधुर हास्य का वातावरण लेकर चलो।

(२) दूसरों में सच्ची दिलचस्पी।

(३) दूसरों के मान और विचारों की रक्षा करो।

(४) बात करने की कला सीखो।

(५) दूसरों की कटु आलोचना मत करो।

मैं क्रमशः अपने पत्रों में इनका थोड़ा २ विवेचन करूँगा। आज तो में पहिले विषय पर ही कुछ लिखूंगा।

तुम अपने चारों ओर मनुष्यों को किस तरह आकर्षित कर सकते हो ? सबसे पहिला प्रभाव मनुष्यों पर तुम्हारी मुख की आकृति का पड़ता है। यदि तुम मनुष्यों के मनोविज्ञान का अध्ययन करो तो तुम इस परिणाम पर पहुँचोगे कि अधिकाँश मनुष्य गंभीर, चिंतित, दार्शनिक, मुख पर तनी हुई नसों, घुड़कने वाली आकृति को पसन्द नहीं करते। जो अपने विचारों में ही खोए रहते हैं या जिनकी हर दृष्टि खाने को दौड़ती है अथवा जो बहुत

कम बोलते हैं उससे लोग दूर भागते हैं। मस्तिष्क की नसों का तनाव उस व्यक्ति की शक्तियों का ह्रास तो करना ही है उसका स्वभाविक परिणाम यह भी है कि अन्य व्यक्तियों पर भी इसका यह प्रभाव पड़ता है कि उनकी नसों में भी तनाव पैदा होता है। यदि तुम दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क की नसों का तनाव कम करना चाहते हो तो उसका एक ही सबसे अच्छा उपाय है कि तुम अपने मस्तिष्क की नसों को ढीला छोड़ दो इसका उसके मस्तिष्क पर बिजली की तरह प्रभाव पड़ेगा। चिंता अथवा क्रोध से एक मनुष्य के मस्तिष्क की नसों का तनाव होने से सिलवट पड़ने से उन नसों में उस समय लचक कम हो जाती है और उसका परिणाम यह है कि हम उनके खिचाव से उनमें चिड़चिड़ाहट और जिद देखते हैं, तुम अपने दिमाग की नसों में तनाव पैदा करके उसके मस्तिष्क की नसों के खिचाव को सिलवटों को और अधिक बढ़ाते हो परन्तु तुम अपनी नसों की लचक न खो कर यदि उसकी अवस्था से हृदय में सहानुभूति रखते हुए मधुरता से व्यवहार करो तो उसका क्या परिणाम होगा? क्या एक शान्तिपूर्ण और मधुर हास्य अनेक क्रोध और भर्त्सनाओं के तूफान को शांत नहीं कर देता?

महात्मा गांधी कोई शरीर से सुन्दर व्यक्ति नहीं हैं पर उनके नेत्रों में जो उनका हृदय-स्पर्शी हास्य से नृत्य करता रहता है वह अनेक विरोधियों को देखते देखते ढीला कर देता है। उनका 'मुक्त हास्य' प्रसिद्ध है, टूटे हुए दांत और पोपले मुख से वे जब सरलता से हँसते हैं तो उनके चारों ओर का वायुमण्डल विद्युत की अनेक तरंगों से व्याप्त हो जाता है और अनेक कठोर से कठोर हृदय को भी स्पर्श कर विचलित कर देता है। कुछ क्षेत्रों में तो वे अपनी आकर्षण की शक्ति के लिये 'जादूगर' के नाम

से प्रसिद्ध हो गए हैं। कुछ अंग्रेज राजनीतिज्ञों का तो विश्वास यह है कि उनमें कोई ऐसी विचित्र शक्ति है जिसने लार्ड इर्विन जैसे कूटनीतिज्ञों को भी ढीला कर दिया। लार्ड रीडिंग तो उनसे इतना घबराते थे कि वे उनसे मिले ही नहीं।

मुझे स्वयम् मालूम है कि राष्ट्रीय क्षेत्र में ही अनेक व्यक्ति जो उनके विचारों से सहमत नहीं थे वाग्युद्ध के बड़े बड़े मसूबे करके गए, जाते ही उन्होंने त्यौरियां भी बदलीं पर थोड़ी ही देर में उन्होंने अनुभव किया कि उस 'जादूगर' ने हँसते २ उन्हें समस्त शस्त्रों से विहित कर दिया, उन्होंने अनुभव किया मानो वे जिस जमीन पर खड़े थे, वह नीचे से निकलती चली जा रही है, उनका आत्म-विश्वास काफूर हो रहा है और हास्य की रेखाएँ जबरदस्ती उनके मुख पर अपना अधिकार जमा रही हैं। पंडित जवाहरलाल जी ने तो अपनी आत्म-कहानी में इसे स्पष्टतया स्वीकार किया है।

यदि तुम यह चाहते हो कि लोग तुमसे जान छुड़ा कर न भागें और आकर्षित हों तो पहला नियम जो तुम्हे स्मरण रखना चाहिए वह यह है कि तुम घर से जब निकलो तो अपनी डरावनी और घुड़कने वाली क्रोध और चिन्ता से पूर्ण आकृति मनहूमियत और मुहर्रमी को एक बक्स में बन्द करके छोड़ आओ। ऐल्वर्ड हब्वर्ड नाम के एक लेखक का परामर्श है कि तुम जब घर से बाहर निकलो तो अपना माथा ऊँचा करके चलो, फेफड़ों को अधिक से अधिक भर लो, प्रकाश मान करो अपने मित्रों से हँसते हुए मिलो और उस मुलाकात में जीवन प्रवाहित कर दो। तुम्हे लोग गलत समझेंगे यह भय छोड दो और अपने दुश्मनों की बाबत सोचने में एक मिनट भी बरबाद मत करो। अपने मस्तिष्क में अपने ध्येय को निश्चित करो

और फिर तुम अपना दृष्टिकोण बदले ही सीधे अपने ध्येय की ओर बढ़ोगे। अपने ध्यान में उन सब महान कार्यों को रक्खो, जिन्हें तुम करना पसन्द करोगे और जैसे २ दिन गुजरते जांयगे तुम देखोगे कि उन्हें प्राप्त करने के अवसर अनायास ही तुम्हारे सामने आ रहे हैं और तुम उनका उपयोग कर रहे हों। तुम अपने मस्तिस्क में इस बात का चित्रण करो कि तुम कैसे योग्य, सच्चे, उपयोगी व्यक्ति होना पसन्द करोगे और तुम जो विचार धारा अपने में प्रवाहित कर रहे हो प्रति घण्टे वह तुम्हें उस तरह के व्यक्ति में परिणित रही है, यह विचार ही प्रमुख है। मस्तिष्क का सही दृष्टिकोण साहस, स्पष्टवादिता और प्रसन्नता का—रक्खो। सही तरह से सोचना ही उसकी पुष्टि करना है। हमारा हृदय जिस पर केन्द्रित है, हम वैसे ही हो जाते हैं।

शेक्सपियर का मत है कि दुनियां में कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं है परन्तु हमारी विचारधारा ही उसे वैसा बना देती है। तुमने अमरीका की स्वाधीनता के इतिहास में अब्राहम लिंकन का नाम तो पढ़ा होगा, अमरीका के महान निर्माताओं में वे एक व्यक्ति थे, उन्होंने एक बार कहा "बहुत से व्यक्ति उतने ही प्रसन्न हैं, जितना कि वह होने का अपना निश्चय कर लेते हैं। हमारे शास्त्रकारों ने तो दुख और सुख को एक मानसिक क्रिया ही बतलाया है।

इसलिए यदि तुम अपने चारों ओर मधुर हास्य का वातावरण लेकर चलना चाहते हो तो उसका निश्चय करके अपने मुख पर हास्य की सरल रेखाओं को फैलने दो, मस्तिष्क की सिलवटें दूर कर दो और तुम्हारे सामने जो आये उसे अपने मधुर हास्य से ओत प्रोत कर दो। तुम निसन्देह कभी भी इतने धनी नहीं हो सकते कि तुम्हारे सामने जो आवे उसको भरपूर सोनेसे लाद दो, दुनिया का सारा सोने का खजाना भी इसके लिए काफी नहीं है परन्तु तुम्हारे पास हास्य के स्वर्ण का ऐसा खजाना है, जिस खजाने से स्वर्ण की प्रभा तुम चारों ओर फैला सकते हो।

और तुम्हारे सम्पर्क में जो आये उसे निहाल कर सकते हो। चाहे जितना लुटाने पर भी यह खजाना खाली नहीं हो सकता। इसकी सोने की जञ्जीरें दूर २ व्यक्तियों को बांधकर तुम्हारा बन्दी बना कर रखेंगी।

तुम्हारे परिवार—स्त्री, बच्चे, माता, बहिन सब आकाँक्षा सहित इस खजाने में से कुछ प्राप्त करने को सतृष्ण दृष्टि से तुम्हारी ओर देख रहे हैं। तुम्हारे अनेक आश्रित—नौकर चाकर तुम्हारे इस खजाने की तनिक कण प्राप्त करने के लिए व्यग्र हैं, तुम अपने इस खजाने के तनिक उद्धार से अपने विरोधियों को अपना सहयोगी बना सकते हो और फिर भी तुम्हारा यह खजाना अपरिमित है। तुम इस खजाने की जितनी ही सम्पत्ति लुटाते हो पाने वाले उसे दुगुना करके तुम्हारे पास वापिस कर देते हैं। जो दूसरों का मृदु-हास्य से स्वागत करता है, उसके लिए दुनिया मृदु-हास्य से परिप्लावित दिखलाई पड़ती है।

तुम्हारे कार्य के हाथ के नीचे ये अनेक व्यक्ति तुम्हारे सहयोगी, अधीनस्थ व्यक्ति और नौकर चाकर पिसे जा रहे हैं तुम क्या यह नहीं चाहते कि उनका भार वहन् करते हुए भी उनके जीवन में तनिक माधुर्य पैदा हो जाय। दुनिया के इस विशाल संघर्ष में तुम तैल-चिकनाहट दे सकते हो। क्या तुम इतना भी नहीं करना चाहोगे ? हा ! तुम्हें इसका मूल्यवान मुआविजा मिलेगा. वे स्वामि-भक्ति, अधिक परिश्रम, तुम्हारे प्रति स्नेह आदि बहुमूल्य चीजों से तुम्हारे मृदुल और स्नेहपूर्ण हास्य की क़ीमत चुकायेंगे।

लोग अपने परिवार—स्त्री, बच्चों के सुख के लिए अनेक चीजें संग्रह करते हैं परन्तु क्या वे उन्हें एक वस्तु नहीं देना चाहेंगे, जो उनके सुख के लिए सबसे अधिक महत्व की है.

वह है, प्रेम-पूर्ण मुस्कान ! इससे वे उनकी सब कमियों को पूरा कर सकते हैं, उन्हें तुम्हारी इस चीज से जितना आनन्द होगा, उतना किसी दूसरी चीज से नहीं हो सकता।

दुनिया में अनेक मनुष्य दुखी हैं, अनेक चिन्तायें उनके जीवन को भीतर ही भीतर खोखला कर रही है, उनके जीवन में अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति होना असम्भव है, उनका जीवन आशा और निराशा की लहरों में ऊपर और नीचे चढ़ता और उतरता है। तुम क्या उनके बिकट संघर्ष में तनिक चिकनाहट देना पसन्द न करोगे ? क्या तुम्हें उनके जीवन में तनिक सरसता के उत्पन्न होने से प्रसन्नता न होगी ? हाँ ! तो फिर तुम यह कार्य बिना किसी धन के अपने तनिक हास्य से कर सकते हो।

हँसना भी जीवन का एक तत्व ज्ञान है। यदि तुम्हें असफलता हुई है तो दिल खोल कर हंसो, यदि तुम्हारे जीवन में निराशा की थपेड़ों ने तुम्हें बेदम कर दिया है तो हँसो; यदि तुम्हारे परिश्रम पर परिश्रम विफल गये हों तो खूब हँसो और जी खोल कर हँसो। इससे क्या होगा ? तुम असफलता, दुःख और थकान के चिन्हों से छुटकारा पा जाओगे, तुम्हें जीवन को पुनः प्रारम्भ करने का उत्साह और शक्ति प्राप्त हो जायगी। इस तरह तुम्हारी असफलता भी सफलता में परिणित हो जायगी। विरोधियों को तर्क से नहीं अपने स्नेहपूर्ण मृदु-हास्य से—अपने मधुरता पूर्ण व्यवहार से जीतो। तर्क से जीती हुई विजय से यह विजय अधिक स्थायी होगी।

एक चीनी कहावत है "जो मुस्कराना नहीं जानता उसे दुकान नहीं खोलना चाहिए।" व्यौपार में मृदु-हास्य एक अमूल्य चिकनाहट है जो व्यौपार की मशीन को तेजी से चला देती

है। एक दूकानदार ने मृदु-हास्य के सम्बन्ध में निम्न तख्ती अपनी दूकान पर टाँग रक्खी थी।

(१) मृदु-हास्य में कुछ खर्च नहीं होता पर पैदा अधिक होता है।

(२) यह पाने वालों को धनवान् बना देता है पर देने वालों को गरीब नहीं करता।

(३) इसकी उत्पत्ति एक क्षण में होती है, पर उसकी स्मृति चिर स्थायी होती है।

(४ कोई भी व्यक्ति इतना धनी नहीं है कि बिना इसके उसका काम चल सके और कोई भी इतना ग़रीब नहीं है कि इससे लाभ न उठा सके।

(५) यह घर में आनन्द का उत्पादक है, व्यौपार में शुभेच्छा पैदा करता है और मित्रों में यह सद्भावना करता है।

(६) यह थके हुओं के लिए विश्राम है, निरुत्साहितों के लिए प्रकाश है; शोकग्रस्तों के लिए चमक है और दुःख के लिये प्रकृति की सर्वोच्च औषधि है।

(७) फिर भी न तो यह खरीदा जा सकता है, न उधार दिया जा सकता है, न चुराया जा सकता है क्योंकि यह ऐसी चीज है जो किसी काम की नहीं है जब तक वह स्वेच्छा से न जाय।

(८) क्या हम आशा करें कि बड़े दिन की भीड़ भाड़ में यदि बिक्री करने वाले आपको यह देना भूल जांय तो आप ही अपना एक मृदु-हास्य इनके लिये

> छोड़ जायेंगे। क्योंकि इसकी सबसे अधिक आव-
> श्यकता उसी को है, जिसके पास यह देने के लिए
> एक भी नहीं बची है।

परन्तु यह बनावटी होने से इसका मिठास जाता रहता है। स्वाभाविक ही हँसता हुआ मुख दुनिया को जीत सकता है।

तुम्हारा पिता।

———

दूसरों के मान की रक्षा करो

(२१)

प्यारे बेटे !

आज़ में जब तुम्हें यह पत्र लिखने बैठा हूं तो यहां जो इस समय करीब सवा सौ से अधिक नजरबन्द हैं, उनका ख्याल मेरे सामने है। आज देश में महीनों और वर्षों से हजारों ऐसे ही व्यक्ति बिना मुकदमा चलाए बन्द हैं, इनमें हजारों वे व्यक्ति हैं जिन्हें लम्बी लम्बी मियाद की सजायें मिली हैं और जो 'सी' क्लास में कष्ट और यन्त्रणा का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इनमें वृद्ध हैं, युवा हैं, लड़के हैं, स्त्रियां हैं इनमें से बहुत से अपने खेलते हुए बच्चों को रुग्ण संबंधियों को घर पर छोड़ आए हैं कुछ को यहां आने से बड़े आर्थिक धक्के सहन करने पड़े हैं, कुछ की दुनियां ही उलट गई है। मैं सोचता हूं कौन सी प्रेरणा है जो उन्हें इस कष्ट सहन की ओर आगे बढ़ाती है। इसमें सन्देह नहीं स्वतन्त्रता की उच्च भावनाओं और आदर्श उन्हें ऊँचा उठा रहा है, पर इन उच्च भावनाओं और आदर्शों को क्रिया-

त्मक रूप में प्रेरणा देने वाली शक्ति क्या है ? स्वयं ऊँचा उठने की भावना।

तुम जानते हो अनेक अच्छे कामों में प्रारम्भ में अधिकतर लोग किस लिए आते हैं ? इसे स्वीकार करने में मुझे तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है कि बहुत से मनुष्यों को प्रारंभ में मान प्राप्त करने—अपने चारों ओर 'बड़प्पन' प्राप्त करने की भावना ही उनके अनेक महान कार्यों की ओर खींच ले जाती है। अनेक मनुष्य धन, सम्पत्ति, घर, परिवार सब का त्याग कर सकते हैं, परन्तु बड़प्पन की भावना से बहुत कम लोगों को छुटकारा मिल पाता है। अनेक त्यागी और तपस्वी व्यक्तियों के जीवन को भी यदि तुम देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि उनमें भी मान प्राप्त करने, ऊँचा समझे जाने की कमजोरी अभी तक मौजूद है।

तुम अनेक धनी व्यक्तियों को देखते हो वे भी और अधिक धन प्राप्त करने की दौड़ में भागे चले जा रहे हैं पर वे और अधिक धन का क्या करेंगे ? उनके पास अधिक से अधिक भोजन हैं, रहने को बढ़िया से बढ़िया कोठी है, सैर करने को बढ़िया 'रॉल्स रायस' मोटर कार है, रेडिओ है, टेलीफून हैं, बैंक में लाखों रुपया है, फिर भी वे और धन प्राप्त करने के लिए सिर तोड़ परिश्रम किस लिए कर रहे हैं ? वही महत्व प्राप्त करने और बड़प्पन की भावना ही उनकी एकमात्र प्रेरणा हैं!

मनुष्य की आवश्यकताएँ सीमा रहित नहीं हैं, उसे आराम से जिन्दगी बिताने के लिए जितने चीजों की जरूरत है, उसे शीघ्र प्राप्त हो सकती हैं, परन्तु दूसरों से ऊँचे सतह पर खड़े होने की भावना छोटे और बड़े सब को निरन्तर कार्य करते

रहने की प्रेरणा देती रहती हैं। मैं जब यह कहता हूं तो मैं इन्हीं गिनी ऊँची और पवित्र आत्माओं की ही बात नहीं करता, मैं तो साधारण संसारी मनुष्यों की बात करता हूँ। साधारण संसारी मनुष्यों में 'बड़े' बनने की एक ऐसी भूख है जो कभी बुझती ही नहीं।

हम अधिक से अधिक यह कह सकते हैं कि मनुष्य की यह कमजोरी है, पर प्रश्न यह है कि क्या हम मनुष्य की इस कमजोरी का कोई अच्छा उपयोग भी कर सकते हैं ? इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य यदि अपनी इस भूख को उचित कामों से शान्त नहीं कर सकता तो वह इसको शांत करने के लिए बुरे मार्गों की ओर जाता है। तुमने प्रसिद्ध तानियां डाकू का तो नाम सुना होगा, सन् १९३२ में वह आगरा जेल में था। मैं जब वहां पहुंचा तो उसने मेरे पैर छुए और और मुझसे कहा कि मैं उसकी कुछ सेवा लूँ। इसी डाकू के मारे आगरे और दूसरे कई जिलों के इलाके थर्राते थे, वह आश्चर्यजनक और बहादुरी के काम करने के लिए अपनी जान को जोखों में डाल देता था। एक बार वह जेल में मय बेड़ियों के बीस फुट ऊँची दीवार पर चढ़ गया और वहाँ जाकर अपनी बेड़ियां बजाने लगा। जेल के कर्मचारी नीचे खड़े हुए इसके हाथ जोड़ रहे थे और उसे नीचे उतरने की प्रार्थना कर रहे थे। ऐसे ही कामों की वजह से तानियां की कैदियों में बड़ी प्रशंसा होती थी, वह कैदियों में अपने लिए 'विशेषता' का स्थान प्राप्त करने का इच्छुक था। और वह उसे इस तरह प्राप्त हो गया था।

इसी आकांक्षा को लेकर अनेक नवयुवक डाकू, खूनी और भयङ्कर कार्य करने वाले बन जाते हैं। अमरीका के एक

खुफिया विभाग के अधिकारी का कहना है कि अनेक नव-युवक जो खून और दूसरे खतरनाक काम करने के जुर्म में गिरफ्तार होते है, वे अपनी सबसे पहिले मांग किसी ऐसे चालू अखबार की पेश करते हैं, जिन्होंने उसके कामों को महत्व देकर बड़े बड़े हेडिंगों से छापा हो। जिन कालमों में अमरीका के सभापति रुजवेन्ट, प्रसिद्ध एटलान्टिक महासागर के उड़ाका कर्नल पिंडबर्ग, रिपब्लिकन पार्टी के नेता बिलकी और ससार के अन्य महान पुरुषों के चित्र छपते हैं उन्हीं कालमों में अपने चित्र छपे देखकर उनकी छातियां फूल जातीं हैं।

प्रसिद्ध मनोविज्ञानिक डाक्टर सिग मन्ड फ्रूड का मत है कि प्रत्येक मनुष्य जो भी काम करता है, उसकी आधार भूत दो प्रेरणाओं में एक प्रेरणा महान बनने की इच्छा होती है। अमरीका के प्रसिद्ध दार्शनिक प्रोफेसर जान डीवे का मत है कि मनुष्य की प्रकृति में एक बड़ी प्रेरणा बड़प्पन की आकांक्षा है। अब्राहम लिंकन ने एक बार एक पत्र का प्रारम्भ करते हुए कहा 'हर मनुष्य प्रशंसा सुनना पसन्द करता है, बिलियम बेक्स का मत है कि 'मनुष्य की प्रकृति में प्रशंसा प्राप्त करने की एक स्वाभाविक इच्छा होती है। हमारे नीतिकारों का भी यही मत है।

मैं यह नहीं चाहता कि यह बात कोई अच्छी चीज़ है। हमारी संस्कृति हमें यह पाठ नहीं सिखाती और जब यह भावना सीमा से अधिक चली जाती है, तब दुनिया में अनेक अनावश्यक संघर्षों, अनाचारों, यन्त्रणाओं का कारण बनती है, जो इससे अपने को बचा सके हैं, वह वास्तव में महान व्यक्ति हैं, उन्हें महान कार्य करने की दूसरी ऐसी प्रेरणाऐं हैं जो अधिक स्थायी और वास्तविक हैं। भगवान कृष्ण ने गीता में ऐसे ही व्यक्तियों को स्थित प्रज्ञ कहा है। प्रत्येक व्यक्ति स्थित प्रज्ञ नहीं है, हाँ! पर उस मार्ग की

ओर बढ़ना चाहिये, परन्तु हम इस वस्तु स्थिति को भी नहीं भूल सकते कि साधारण मनुष्यों में यह कमजोरी है और रहेगी । प्रश्न यह हैं कि हम उसको दुरुपयोग न होने देकर सदुपयोग कैसे कर सकते हैं ? आज इस 'बड़प्पन' की भावना—मान प्राप्त करने की आकांक्षा से कौन बचा है ? परन्तु इस 'बड़प्पन' को प्राप्त करने के साधन भिन्न-भिन्न हैं । आज बिड़ला या सेठ जमनालाल बजाज अपनी इस बड़प्पन की भावना की पूर्ति एक कालेज या अस्पताल अथवा आश्रम स्थापित करके और उसे लाखों का दान देते हैं और दूसरे इसी भावना की पूर्ति कोई सनसनी खेज कार्य—डकैती, खून अथवा नकली सिक्का चला कर करते हैं ।

सन् १९४१ में यहाँ एक कैदी था, उनका पीछा पुलिस के दरोगा, सिपाही करते रहते थे परन्तु वह हाथ नहीं आता था । यदि वह कहीं घिर भी जाता था तो मौका पाते ही थानेदार की घोड़ी की पीठ पर कूद कर ही भाग निकलता था । कितनी ही बार उसने इस तरह पुलिस को चकमा दिया । पर यह क्या कोई जिन्दगी है, वह भी भाग रहा है, पुलिस भी पीछे भाग रही है, पर उसे इसी में मज़ा है, उसकी बड़प्पन की भूख इसी में बुझती है । और जब वह मुझ से अपनी यह कहानियाँ सुनाता तो उसके कन्धे ऊँचे उठ जाते । भला इसमें भी कोई गौरव अनुभव करने की बात है ? पर मनुष्य की यह प्रवृति है ।

प्रश्न यह उठता है कि हम मनुष्य की इस कमजोरी का भी सदुपयोग कैसे कर सकते हैं ? इससे सन्देह नहीं कि मनुष्य अपनी प्रशंसा सुनना चाहता है । अपनी प्रशंसा के अतिरिक्त दूसरी अधिक आकर्षक चीज दुनियाँ में दूसरी नहीं है । आप किसी व्यक्ति का नाम लीजिये, उसके कान आपकी ओर लग जायँगे । उसके कानों को अपना नाम बड़ा प्रिय है । वह आप से अपनी प्रशंसा सुनना

चाहता है, इससे अधिक उसके लिये दूसरा आकर्षण नहीं है। इसमें वह उचित अनुचित की सीमा की पर्वाह नहीं करता। यह प्रशंसा बहुधा खुशामद के रूप में परिणित हो जाती है। असत्य अथवा सत्य असत्य का मिश्रण ही खुशामद है पर सच्ची प्रशंसा खुशामद नहीं है।

खुशामद वह नकली सिक्का है जिससे न केवल उस व्यक्ति को ही धोखा देते हो अपितु अपनी भी बड़ी हानि करते हो। नकली सिक्का पकड़े जाने पर जैसे चलाने वाले की साख ही ले डूबता है उसी तरह खुशामदी व्यक्ति अपने लिये आकर्षण के स्थान में घृणा उत्पन्न कर लेता है।

पञ्चम जार्ज ने अपने बकिंघम भवन में में छः महान वाक्यों में एक वाक्य यह लिख कर टाँग रक्खा था कि मुझे न तो खुशामद करना सिखाओ और न सस्ती खुशामद प्राप्त करना। खुशामद एक ऐसी अफीम है जिसकी एकबार लत हो जाने पर अधिक और अधिक होने की ज़रूरत होती है। उस मित्र से खतरनाक दूसरा व्यक्ति नहीं है जो खुशामद की अफीम की आदत अपने मित्र में डालता है। वह तो उस अफीम बेचने वाले के समान है जो अपने काम के लिये दूसरों को अफीमची बनाने की चेष्टा करता है।

खुशामद और सत्य प्रशंसा में नकली और असली सिक्के की तरह अन्तर है और कभी-कभी यह अन्तर अदृश्य भी हो जाता है परन्तु फिर भी उसका प्रयोग मनुष्यों के लाभ में हो सकता है। तुम प्रशंसा करके मनुष्य को अपनी ओर खींच भी सकते हो परन्तु झूँठी प्रशंसा-खुशामद से बचकर उसके हानिकारी पहलू से भी बच सकते हो।

यदि तुम मनुष्यों को ध्यान से देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि बुरे आदमियों में भी कुछ गुण हैं। ऐमरसन का मत है कि हर

मनुष्य जो मुझसे मिलता है किसी न किसी रूप में वह मुझसे श्रेष्ठ है. उस खूबी से मैं उसे समझता हूँ। उनकी बुराइयों ही पर बराबर चोट मारने से कोई लाभ नहीं है। क्योंकि वे ऐसी हालत में तुमसे विद्रोह कर देंगे। परन्तु तुम उन्हें बुरी आदतों से उनका ध्यान अच्छी आदतों की ओर, उनकी अच्छी आदतों की प्रशंसा करके परिवर्तित कर सकते हो। अगर उसके अच्छे गुणों—अच्छे कामों की तुम जी भर कर प्रशंसा करो तो तुम बुरे कामों से उसकी शक्ति को उन अच्छे कामों में प्रबाहित कर दोगे। यदि तुम्हारा कोई मित्र, तुम्हारा परिवार का कोई व्यक्ति अथवा तुम्हारा कोई सेवक कोई अच्छा काम करता है तो तुम उसके दूसरे बुरे कामों के होते हुए भी उसके उस कार्य की प्रशंसा क्यों न करो? निस्सन्देह यदि तुम ऐसा करो तो तुम भला बनने में उसकी सहायता करोगे।

आदमियों से काम लेने. उन्हें सुधारने, उनमें अपने लिए आकर्षण पैदा करने की एक नई पद्धति यह है कि तुम उसकी बुराइयों को एक बार दर गुज़र कर दो, उसकी भर्त्सना मत करो। परन्तु जब वह अच्छा कार्य करे अथवा उसमें किसी अच्छे गुण का विकास हो तो उसकी प्रशंसा, जी भर कर प्रशंसा अवश्य करो। उसे अच्छे कामों और अच्छे गुणों की ओर प्रोत्साहित करो, इससे उसकी बुराइयां स्वयं ही अच्छी हो जाँयगी और वह भला बन जायगा।

अनेक बार पिता से पुत्र, स्वामी से सेवक पति से पत्नी, तनिक सी चूक के लिए कड़ी से कड़ी भर्त्सना तो प्राप्त करते हैं परन्तु जब वे कोई अच्छा कार्य करते हैं, अपने अच्छे गुणों का प्रदर्शन करते हैं तो वे ही उसमें उदासीनता का भाव प्रकट करते हैं, इससे उनमें अच्छे कार्यों और गुणों के लिए कोई उत्साह ही नहीं पैदा होता। वे समझते हैं कि उनका जीवन तो ताड़नाओं के लिए ही है। वे

लद्दू घोड़े की तरह हो जाते हैं, वे चाबुक पर चाबुक पड़ते रहने पर भी अपनी चाल से चलते रहते हैं। उनमें उन चाबुकों से चाबुक देने वालों के प्रति घृणा का भाव ही पैदा होता है।

अपने आधीन व्यक्तियों और सेवकों को ऊँचा उठाने का एक अत्यन्त सरल तरीका यह है कि तुम उन्हें दूसरों के सामने मान प्रदान करो, तुम जो प्रतिष्ठा उन्हें दोगे वह उसे कायम रखने की चेष्टा करेंगे। वह तुम्हें भरसक सन्तुष्ट करने की चेष्टा करेंगे ताकि तुम उन्हें इसी प्रकार सम्मानित करते रहो। इसके विपरीत दूसरे के सामने यदि उन्हें नीचा गिराओगे तो उनमें तुम्हारे प्रति विद्रोह पैदा होगा और वह आत्म-विश्वास भी खो बैठेंगे। किसी आदमी को गिराने के लिए इससे अच्छा और कोई दूसरा तरीका नहीं है कि तुम दूसरों के सामने उसकी भर्त्सना करो।

इसलिए आकर्षक बनने का दूसरा नियम है "अच्छे कार्यों और गुणों की जी भर कर प्रशंसा करो।"

तुम्हारा पिता।

कटु आलोचना मत करो

(२२)

प्यारे बेटे,

मैं अभी एक कैदी से बात कर रहा था, बीस वर्ष की लम्बी सजा है इसकी। यह एक खतरनाक डाकुओं के गिरोह में था, इस गिरोह ने पचासियों घरों को तबाह किया, खून किया और लाखों की सम्पत्ति बन्दूक की नली के बल पर छीन ली परन्तु यदि तुम इससे बात करो तो ? मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है कि यह आज भी यह विश्वास करता है कि उसके साथ बड़ा जुल्म किया गया है, उसने कोई बड़ा अपराध नहीं किया, जिसकी उसे यह सजा मिलनी चाहिए थी। वह अमीरों को अवश्य लूटता था परन्तु वह गरीबों से हाथ नहीं लगाता था। यह अमीर लोग गरीबों का खून चूसते हैं तो यदि उसने इनका खून चूस लिया तो भी अपने बालबच्चों के पालन के लिए तो उसने क्या बुरा किया ? यदि पुलिस वाले उसका पीछा करते थे और उसने उन्हें घायल कर दिया तो क्या अपराध किया ? वह भी एक हृदयवान धर्मात्मा पुरुष था, गरीबों की सहायता करता था और प्रति दिन घण्टों बैठकर ईश्वर का भजन करता था।

इसी तरह की कुछ थी विचारधारा उसकी और यह विचार

है एक भयानक डाकू के ! फिर साधारण मनुष्य की बात ही क्या है? इन डाकुओं में से अनेक तो यह कहैंगे कि समाज के निर्धन और गरीबों के–बे सबसे बड़े हितचिंतक हैं। अमरीका के एक प्रसिद्ध अपराधी आल केयन ने एक बार कहा "मैंने अपने जीवन के सबसे अच्छे दिन जनता का मनोरञ्जन धर ने उन्हें कौतूहलजनक आनन्द देने में व्यतीत किये और मुझे मिला क्या ? अपशब्द ओर पीछा किया जाने वाले व्यक्ति का जीवन !" यह अमरीका के सामाजिक शत्रु नम्बर एक का मत है । अमरीका के एक और खतरनाक गिरोह के सरगना 'डच स्कल्ज' ने एकबार एक पत्र के सम्वाद दाता को कहा कि वह एक बड़ा समाज सेवी है और उसने उसका विश्वास किया।

यह उन व्यक्तियों का अपने सम्बन्ध में मत है जिनके अपराध के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। फिर साधारण मनुष्यों की बात ही क्या है ? वास्तव में बात यह है कि हम दूसरों की कमियों और अपराधों को जिस दृष्टि से देखते हैं, दूसरे उन्हें उस दृष्टि से नहीं देखते। यदि वे ही कमियाँ और दोष हम में आ जावें तो हम भी उनकी गम्भीरता को उतना अनुभव नहीं करेंगे । उनके लिये अनेक तरह की सफ़ाई ढूँढ़ करेंगे और अनेक परिस्थितियों का सहारा ले लेंगे। इसलिये हमें सदैव स्मरण रक्खो कि तुम दूसरों के अपराधों और कमियों को जिस काँच में से देख रहे हो दूसरे उस कांच से उन्हें नहीं देखते । जो तुम्हारे लिये बड़ी गम्भीर गलतियाँ हैं उनके करने वाले उसे इतनी गम्भीर दृष्टि से कभी नहीं देख सकते। यदि तुम अपने काँच से देख कर उनकी गम्भीरता को अनुभव करते हुए उनकी कटु आलोचना करने लगो तब ? तब वे तुरन्त उन्हें अपने काँच में से देखेंगे। उन्हें यह अनुभव होगा कि तुम उनकी जो भर्त्सना कर रहे हो, वह उसके पात्र नहीं हैं, जो तुम अनुचित प्रकार से कठोर हो और तुम उनके प्रति अन्याय

करते हो। ऐसे दृष्टि कोण में क्या तुम उचित सुधार का वातावरण उपस्थित कर सकोगे? क्या वे अपने अपराध पर विचार करने के लिये भी लाचार होंगे? क्या उनमें अपनी बात को सही साबित करने और उस पर अड़े रहने का हठ उत्पन्न नहीं होगा?

एक महान पुरुष ने इसे स्वीकार करते हुए कहा कि उन्होंने तीस वर्ष हुए इस बा का अनुभव कर लिया कि किसी की भर्त्सना करना—उसकी कटु आलोचना करना व्यर्थ है। उन्हें अपनी कमजोरियों के दूर करने में ही काफी कठिनाई होती है और फिर ईश्वर ने बुद्धिमता का बटवारा तो समान नहीं किया है। तुम जिसे गलती समझते हो सम्भव है वह उसे सच्चाई से ऐसा न समझता हो फिर तुम उसकी भर्त्सना करके उसमें परिवर्तन कैसे कर सकते हो। वह तो अपनी उस बात पर और मजबूती से अड़ जायगा, उससे उसके दिल में तुम्हारे प्रति विद्रोह उत्पन्न होगा। वह अनुभव करेगा मानों तुम उसकी भर्त्सना—कटु आलोचना करके तुम उसके सम्मान के भाव, उसके महत्व को ठेस पहुँचा रहे हो। परिणाम? उसके हृदय म तुम्हारे अन्याय (?) का मुकाबिला करने का भाव पैदा होगा।

आज दुनियां में यही हो रहा है। कटु आलोचना कितनी कटुता, कितनी अप्रियता के फैलाने का कारण है और उससे मिलता क्या है। गलती करने वाला अपनी गलती को और मजबूती से पकड़ता है और उसका समर्थन करता है।

जर्मन फौज में यह एक नियम है कि वहां किसी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की शिकायत घटना के तुरन्त बाद करने की आज्ञा नहीं दी जाती उसे एक रात्रि के विश्राम के बाद जब कि उसका मस्तिष्क टेढ़ा हो जाय तब भी यदि उसे आवश्यक मालूम हो तो उसे शिकायत करनी चाहिए। इस नियत का यदि हम

पालन अपने मित्रों, परिवार और अपने दफ्तर—दुकान में करें तो बड़ा लाभ हो। यदि तुम्हें किसी की भर्त्सना करना या कटु आलोचना करना है तो कुछ समय गुजर जाने दो और शांति के वातावरण में उस सम्बन्ध में बातचीत करो। अनेक बार तुम देखोगे कि तुम -शान्तिपूर्ण वातावरण में वस्तुस्थिति को अधिक वास्तविकता में देख रहे हो और उसकी कटुता को कम करने में सफल हुए हो। उस मनुष्य को इस परिस्थिति में मत रक्खो कि उसे अपनी गलती का समर्थन करना आवश्यक हो जाय उसमें प्रतिद्वन्दिता का भाव घुस जाय। इसका परिणाम उलटा होगा इसके विपरीत यदि तुम उसके मस्तिष्क को अपनी गलती पर विचार करने की परिस्थिति में रख दो तो तुम्हारा अभिप्राय बहुत शीघ्र प्राप्त हो जायगा। सुधार का सबसे अच्छा उपाय यह है कि जिस व्यक्ति में सुधार वाञ्छित है उसे अपनी गलतियों पर स्वयं सोचने का अवसर दिया जाय। अपनी गलती का समर्थन करने की प्रवृत्ति को उसमें से निकाल कर उसकी गलती को अनुभव करा दिया जाय।

सन् १९०८ में थियोडर रुजवेल्ट अपने स्थान पर श्री टेफ्ट को अमरीका का प्रेसीडेण्ट नियुक्त करके शिकार को चले गए। वे जब लौट कर आए तो उन्हें टेफ्ट की बहुत सी गलतियां मालूम हुईं। वे उबल पड़े और उन्होंने उनकी बड़ी भर्त्सना की परन्तु तुम जानते हो टेफ्ट ने क्या उत्तर दिया। उसने आखों में आँसू भरते हुए कहा "मैं यह नहीं जानता कि मैंने जो कुछ किया उससे भिन्न और क्या कर सकता था?" मैंने अमुक परिस्थितियों में जो कुछ किया उससे भिन्न और क्या कर सकता था?" हर व्यक्ति यही सोचता है और अपना समर्थन इसी प्रकार करता है।

अमरीका के महान पुरुष अब्राहम लिंकन ने अपने अनुभवों से यह भली प्रकार समझ लिया कि लोगों की भर्त्सना करना—कटु

आलोचना करना—व्यर्थ है। वह जब नवयुवक थे तो वे दूसरों की बड़ी कटु आलोचना करते थे परन्तु अनुभव ने उन्हें सिखा दिया कि इससे कोई लाभ नहीं। अमरीका के गृह युद्ध में लिंकन के पोटोमक की सेना के अध्यक्ष स्थान पर क्रमशः श्री मेकेलन पोप, बर्न-साइड, हूकर, मीड को नियत किया परन्तु उनमें से प्रत्येक ने कोई न कोई ऐसी बड़ी गलती की कि लिंकन चिन्ता और उत्तेजना से अपने दालान में चहल कदमी करने लगता। करोड़ों आदमी उन्हें भला बुरा कह रहे थे। जब श्रीमती लिंकन और दूसरे व्यक्तियों ने कठोर शब्दों में उनकी आलोचना की तो उसने कहा "उनकी आलोचना मत करो! वे ठीक उसी तरह के हैं जैसे कि हम भी इन परिस्थितियों में होते।"

एक बार उसके एक जनरल मीड ने एक भयंकर भूल की। दुश्मनों की सेना जब पीछे लौट रही थी तब बीच में पोटमक नदी आ गई। लिंकन ने जनरल मीड को तुरन्त दुश्मन को नदी पार करने से पूर्व ही उस पर हमला करने का और मीटिंग और परामर्श में समय नष्ट न करने का आदेश दिया परन्तु जनरल मीड ने क्या किया? बिलकुल इसके विपरीत! वह परामर्श और मीटिंग करता रहा। परिणाम पोटमक नदी का पानी कम हो गया और ली की फौजें साफ बच कर निकल गई अब्राहम लिंकन का धैर्य हाथ से छूट गया। उसने अपने लड़के से कहा "इसके क्या मायने हैं? या खुदा! इसके क्या मायने हैं? वह हमारी पकड़ में आ गए थे, हमें केवल अपने हाथ फैलाने थे और वे हमारे थे पर मेरे इतना कहने और जोर देने पर भी हमारी फौज एक इञ्च भी आगे नहीं बढ़ी। इस परिस्थिति में कोई भी जनरल अंग्रेजी सेनापति ली को हरा सकता था। यदि मैं वहां पहुँच गया होता तो मैं स्वयं उसे कोड़े की मार लगा सकता।" वह क्रोध में जनरल मीड को एक कड़ी चिट्ठी लिखने

के लिए बैठा और उसने एक कड़ी चिट्ठी लिखी । परन्तु क्या वह जनरल मीड के पास पहुँची। कभी नहीं लिंकन ने उसे कभी भेजा ही नहीं। उसने शान्ति से पुनः विचार किया और सोचा सम्भव है वह स्वयं श्वेत-गृह के शान्तिपूर्ण वातावरण में बैठा हुआ युद्ध की पूरी परिस्थिति का अनुभव न कर सकता हो। सम्भव है जनरल मीड ने गत सप्ताह के भयङ्कर और खून खराबों और चीत्कार में जो कुछ किया वही यदि मैं भी इन परिस्थितियों में हो कर गुजरा होता तो करता, जो मीड ने किया। अब्राहम लिङ्कन के इसी गुणों के कारण कि प्रेसीडेण्ट रुजवेल्ट उनका चित्र अपने दफ्तर में टंगा रखते थे और यदि कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती थी तो वह उनका चित्र देखकर विचार करते "यदि लिंकन मेरी इस परि-स्थिति में होते तो क्या करते ? वह इस गुत्थी को कैसे सुलझाते ?"

एक वार मैंने डाक्टर पट्टाभी सीता रम्मया के सामने एक व्यक्ति की बड़ी आलोचना की। डाक्टर ने कहा "धारणा रखना व्यर्थ है। सम्भव हैं वह ऐसी परिस्थिति में हो कि उसके लिए अति-रिक्त कोई दूसरा मार्ग हो। "

अनेक परिस्थितियों ऐसी होती हैं जब मनुष्य को उनकी ग़लती बताना और उनकी मधुर ताड़ना करना भी आवश्यक हो जाता है, यह आलोचना कैसे करनी चाहिए यह मैं किसी दूसरे पत्र में बता-ऊँगा। यहां इतना कहना ही काफी है कि उसकी गलतियां इस तरह बतलाओ कि वह अपनी गलतियों को महसूस करने लगे और उनके लिए उसे पश्चाताप हो। यदि उसका मस्तिष्क अपनी गलतियों और और भूलों के सोचने में लग जाय और उसमें उन्हे दूर करने की एक उत्कट अभिलाषा हो जाय तो तुम्हारा कार्य पूरा हो जायगा। यदि उसे यह विश्वास हो जाय कि तुम उसकी आलोचना के लिए

नहीं अपितु उसके हित के लिए करते हो तो वह तुम्हारा कृतज्ञ होगा।

स्मरण रक्खो आकर्षण व्यक्ति का तीसरा नियम है। "किसी की कटु आलोचना मत करो और न उसकी गलतियां इस तरह बतलाओ कि वह उन गलतियों को दूर करनें का हट कर ले।

तुम्हारा पिता।

अपने में ही केन्द्रित मत बनो, दूसरों में दिलचस्पी लो

(२३)

प्यारे बेटे

आज दुनियां में महात्मा गांधी का व्यक्तित्व सर्वश्रेष्ठ है। विश्व के कौने कौने में उनको साधारण मनुष्य भी जानते हैं। मेरे एक मित्र योरुप की जब यात्रा करने गये, बहुत सी जगह उनसे पूँछा जाता था "आप किसी देश के निवासी हैं? "वह जब कहते "इण्डिया" तो तुरन्त ही इनसे प्रश्न पूँछा जाता "गांधी इण्डिया?" यानी गाँधी का भारतवर्ष? तुम्हें जब मालूम होगा कि उनके सम्पर्क में साधारण से साधारण जो व्यक्ति आता है, उसमें वे कितनी दिलचस्पी लेते हैं तो तुम्हें आश्चर्य होगा। इस देश में उनके मित्रों, परिचितों और भक्तों का एक विशाल समुदाय है, हजारों आदमी उनके पत्र-व्यवहार करते हैं और उनसे अपने व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं में पथ प्रदर्शन की आशा रखते हैं। इनमें से कुछ लोगों को लिखे हुए उनके पत्रों को समय समय पर देखने का अवसर मुझे मिला है और मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वह उनके छोटे छोटे घरेलू मामलों में भी कितनी दिलचस्पी लेते हैं। इसी तरह आश्रम में जो व्यक्ति रहते हैं उनमें से हर एक के मानसिक, शारीरिक, और गृहस्थके मामलों में वे गहरी दिलचस्पी

लेते हैं। क्या उनकी यह दिलचस्पी, यह गहरी सहानुभूति उनके प्रति हजारों व्यक्तियों के व्यक्तित्व के आकर्षण का एक कारण नहीं है ?

मेरे एक मित्र हैं, करोड़ों का काम है उनका। वे एक बार आगरा आये, आगरे से पांच छः मील दूर गाँव का एक ब्राह्मण उनके यहाँ कभी रसोइया था, वे समय निकाल कर अपनी मोटर पर उसके गांव मिलने गये और उससे उसके घरेलू मामलों पर बात चीत की और उसके बच्चों को जो मिठाई ले गये थे, दी। जो व्यक्ति ऐसे छोटे छोटे व्यक्तियों के प्रति इतनी दिलचस्पी और सहानुभूति रखता है उसका व्यक्तित्व यदि लोगों को चुम्बक की तरह अपनी ओर आकर्षित करता है तो, इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

एक बार तुम्हारी माता बीमार पड़ीं। उनकी बीमारी का समाचार अखबारों में छप गया। एक सज्जन, जो कौंसिल आफ-स्टेट के एक सदस्य भी हैं और जिनसे केवल एक दो बार ही मेरी मुलाकात हुई थी कोई विशेष परिचय नहीं था, उन्होंने मुझे सहानुभूति में एक लम्बी चिट्ठी लिखी और उसमें उन्होंने विवरण सहित कई परामर्श ही नहीं दिए अपितु उन्होंने 'स्कूल आफ ट्रापीकल मैडीकल सहायता के लिए सुपरिंटेन्डेन्ट के नाम पत्र भी भेजा कि वह मेरी सहायता करें। उनकी यह निस्वार्थ भावना मुझे उनकी ओर खींचने के लिए काफी थी।

आज कल अमरीका के प्रेसीडेन्ट श्री रूजवेल्ट हैं, उनके पूर्व एक और रूजवेल्ट हुए हैं, इनका नाम थियोडर रुजवेल्ट था पार्टी के नेता थे। वह बड़े सर्व-प्रिय थे उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक था और उनके नौकर तक उन्हें बहुत प्रेम और आदर करते थे। एक बार श्री टेफ्ट नामक व्यक्ति प्रसीडेन्ट थे तो वे श्वेत-गृह

White-House गये। श्वेत गृह अमरीका में वह भवन है जहाँ अमरीका का प्रेसीडेन्ट रहता है। उस समय प्रेसीडेन्ट और श्रीमती टेफ्ट वहां नहीं थे। श्री रुजवेल्ट जब प्रेसीडेन्ट थे, तब श्वेत-गृह में रह चुके थे और वहां के टहलुओं और नौकरों में परिचित थे। वे छोटे छोटे नौकरों तक से उनका नाम लेकर मिले। जब उन्होंने एक रसोइदारिन ऐलाइस को देखा तो उन्होंने पूंछा कि क्या अब भी वह कर्न ब्रेड पकाती है। एलायस ने उत्तर दिया "हां ! कभी कभी नौकरों के लिए, परन्तु ऊपर हवेली में अब कोई कार्न ब्रेड नहीं खाता"

रूजवेल्ट ने कहा यह उनकी बुरी रुचि का परिचायक है और मैं जब प्रेसीडेन्ट टेफ्ट को मिलूँगा तब उन्हें ऐसा अवश्य कहूंगा। एलायस एक रोटी का टुकड़ा एक रकाबी में ले आई, रूजवेल्ट उस को खाते हुए ही माली और दूसरे जो लोग भी आए उनसे मिलते हुए आफिस में चले गए। उन्होंने हर एक व्यक्ति को उसी प्रेम से सम्बोधन करके पुकारा जिससे वे जब दो वर्ष पूर्व प्रेसीडेण्ट थे, तब पुकारते थे। उसके वर्षों बाद तक रूजवेल्ट की इन्सानियत को वहां के नौकर बड़े स्नेह से स्मरण करते रहे। वहां की एक टहलुई ने आंखों में आंसू भर कर कहा "हमारे दो वर्ष में केवल यही एक आनन्द के दिन की स्मृति है और हममें से कोई भी उसे सौ डालर के बदले में भी देना पसन्द न करेगा।"

प्रेसीडेन्ट विट्ठल भाई पटेल का नाम तो तुमने सुना होगा, वह भारतीय धारा सभा के प्रसिद्ध सभापति थे। उनके काल की अनेक घटनाएँ ऐतिहासिक महत्व रखतीं हैं और प्रेसीडेन्ट पटेल के व्यक्तित्व को बहुत ऊंचा उठाती है। मैंने उन्हें एक बार एक बिधान सम्बन्ध समाचार पर एक पत्र लिखा। उनके तीन चार दिन बाद, देहली से टेलीफून आया और मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि

टेलीफोन पर स्वयं प्रेसीडेन्ट पटेल बोल रहे थे। उन्होंने छः मिनट तक फून पर बातचीत की और अपनी सम्मति ही नहीं बताई बल्कि उस सम्बन्ध में पुस्तकों का पूरा विवरण, पृष्ठ संख्या जहाँ इस सम्बन्ध में विवरण है वह मुझे लिखा दिया।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अपनी बात में उसे सबसे अधिक महत्व है। तुम चाहे बहुत बड़े आदमी हो जाओ, दूसरे आदमी चाहे बहुत ग़रीब हों, तुम्हारी बातें चाहे लाखों की हों और दूसरों की बातें बहुत छोटी हों परन्तु तुम्हारी बड़ी-बड़ी बातों से उन्हें क्या? उनकी छोटी बातें उनके लिये तुम्हारी बड़ी बातों से अधिक महत्व-पूर्ण हैं। तुम्हारी 'मैं मैं मैं ...' में तुम कितने ही डूबे हुए क्यों न हो पर इससे तुम दूसरों के हृदय में आकर्षण नहीं पैदा कर सकते। तुम्हारे पास चाहे जितना धन हो, चाहे जितनी विद्वता हो, चाहे जितनी शक्ति हो पर तुम यदि दूसरों के काम में दिलचस्पी न लो तो वे तुम्हारी ओर आकर्षित नहीं हो सकते। यदि तुम चाहते हो कि दूसरे तुम में दिलचस्पी लें—सन्निकटता का अनुभव करें तो उसका एक ही मार्ग है कि तुम उनमें दिलचस्पी लो, उनके सन्निकट पहुँचने की चेष्टा करो।

कुछ लोग अपने आप में इतने केन्द्रित रहते हैं कि वह उससे आगे कुछ देख ही नहीं पाते। हमारे साथ जेल में एक वैद्य जी थे, उन्हें अपनी ही बातों में ही दिलचस्पी थी। खाते-पीते, उठते-बैठते उन्हें अपनी डींग ही हाँकना आता था। अपनी चातुरी और उपचार की अनन्त कहानियां वे सुनाते रहते थे आखिर, लोग ऊब गये। जो लोग बीमार हो जाते, वे ही उनकी उन कहानियों में दिलचस्पी प्रकट करते थे। कुछ लोग उनके पीछे हँसते थे। जो लोग अपने में इतने अधिक डूबे रहते हैं प्रायः उनका इसी तरह मज़ाक उड़ता है।

यदि तुम मनुष्यों के मनोविज्ञान का अध्ययन करना चाहते हो तो तुम्हें मालूम होगा कि अधिकांश मनुष्य अपने ही में अधिक केन्द्रित हैं। उन्हें सब से अधिक आकर्षण अपनी ही बातों में है। यदि तुम लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हो तो तुम उनके इस दायरे में प्रवेश करो, अपने में नहीं उनमें अपनी दिलचस्पी प्रगट करो।

अपनी विद्वत्ता, अपनी शक्ति, अपने धन, अपनी कोठी, मोटर आदि से तुम यदि लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हो तो तुम इसका प्रयत्न कर सकते हो, परन्तु तुम्हारी असफलता इतनी ही निश्चित है जितना कि कल प्रातः सूर्य का निकलना। यह चीज़ें प्रथम आकर्षण अवश्य पैदा कर सकती है, परन्तु आकर्षण क्षणिक होगा। नैपोलियन ने जोसेफीन से अन्तिम भेंट में कहा "जोसेफीन! मैं इतना ही अधिक भाग्यशाली हुआ जितना इस दुनिया में कभी कोई व्यक्ति हो सकता है; परन्तु तब भी इस समय तुम ही केवल विश्व में ऐसे व्यक्ति हो, जिस पर मैं भरोसा कर सकता हूं।" और ऐतिहासिकों को सन्देह है कि वस्तुतः उसका यह विश्वास भी सत्य था या नहीं। योरुप का विजेता नैपोलियन! विश्व के ऐतिहासिक घटना प्रवाह को बदल देने वाला नैपोलियन! आह अभागा नैपोलियन उसके पास एक भी विश्वास पात्र व्यक्ति न था। कारण? कारण यह कि वह अपने आप में ही इतना केन्द्रित था कि वह दूसरों का कभी विचार ही नहीं करता था।

एक प्रसिद्ध मनोविज्ञान के पण्डित श्री अल्फ्रेड एडलर ने एक पुस्तक लिखी है What life should mean to you उस पुस्तक में वे लिखते हैं "उस व्यक्ति को इस विश्व में सब से अधिक कठिनाई है, जिसे कि अपने सन्निकट साथियों में कोई दिलचस्पी नहीं है और वह दूसरों को भी सब से अधिक हानि

पहुँचता है। ऐसे व्यक्तियों में से ही असफलताओं की उत्पत्ति होती है।"

आज हिन्दुस्तान में यदि तुम एक दुकानदार को किसी ऐसी बात के सम्बन्ध में चिट्ठी लिखो, जिसमें उसे दिलचस्पी नहीं है तो वह प्रायः उसका उत्तर नहीं देगा, अथवा वह आपको एक सीधा सा जवाब दे देगा कि वह अमुक काम नहीं करता। तुम टेलीफून से यदि किसी कपड़े के दुकानदार से पास की दूसरी रेडियो वाले की दूकान को पूंछो तो या तो वह बिना जवाब दिये ही टेलीफून रख देगा अथवा कोई टालम टूल का जवाब दे देगा। क्यों कि वह समझता है, उस बेगार से उसे लाभ नहीं। परन्तु आधुनिक व्यवसाय के तरीकों में बड़ा परिवर्तन हो गया है। निस्सन्देह उस दुकानदार ने जिसने तुम्हारे पत्र का उत्तर नहीं दिया अथवा टेलीफून उठाकर रख दिया, उसने तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करने का एक अवसर खो दिया। वह चाहता तो तुम्हें अपनी कृतज्ञता में बांध सकता था। मेरे एक मित्र फ्रांस गये वहां उन्हें एक दावत में निमन्त्रित किया गया परन्तु उनके पास दावत में जाने योग्य कोई सूट नहीं था। वे अपने होटल के पास ही एक सिले हुए कपड़े बेचने वाले के पास गये परन्तु यह कपड़े किराये पर नहीं देते थे और एक दावत के लिए इतनी कीमती सूट खरीदना बड़ा अपव्यय था। दुकान के मैनेजर ने इन्हें चिन्तित देखकर कहा "आपके कमरे का नम्बर क्या है? उन्होंने कहा २३, अच्छा आप जाइये तीन घंटे में आपको सूट मिल जायगा। मैनेजर ने एक दूसरे दुकानदार से, जो किराये पर सूट देते थे एक सूट मंगवाया और ठीक समय पर उनके पास भेज दिया। दूसरे दिन ये सूट लौटाने गये तो उन्होंने उसका किराया पूंछा। मैनेजर ने कहा आपकी इस दुकान के प्रति सद्भावना ही इसका किराया है। इन्होंने बहुत आग्रह किया परन्तु उसने इनसे

कोई किराया लेना पसन्द नहीं किया। क्योंकि यह उसका व्यवसाय नहीं था, परन्तु उसने सदा के लिए सद्भावना के पाश-बन्धन में उन्हें बांध लिया।

दूसरों के छोटे २ काम करके तुम बहुत बड़े आदमियों को आकर्षित कर सकते हो। और बड़े २ कामों में उन्हें अपना महायक गना सकते हो। हर एक व्यक्ति में कोई न कोई प्रिय व्यसन होता है, कुछ लोग बाग़ बगीचों में फूल पत्तों से दिलचस्पी रखने हैं कुछ को चित्रों से प्रेम होता है, कुछ सिक्के ही संग्रह करते हैं, तुम उनके इस आमोद प्रमोद के कार्यों में थोड़ी दिलचस्पी लेकर उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकते हो। अथवा उनके बच्चों के स्वास्थ्य और शिक्षा में सहयोग देकर उनके कृपा-पत्र बन सकते हो। यदि यह सहयोग सच्चे भाव से हो तो इसका प्रभाव भी बहुत अधिक होता है। इसलिए आकर्षक व्यक्ति का चौथा नियम है अपने में ही केन्द्रित मत बनो दूसरों में दिलचस्पी हो।

तुम्हारा पिता।

बात करने की कला

(२४)

प्यारे बेटे,

मैं जब स्कूल में पढ़ता था तब हमारे एक अध्यापक थे, एफ० ए० फेल। हमारे यहाँ जो मासिक वाद विवाद सभा होती थी उसमें वह प्रायः व्याख्यान तेते थे, वे जब व्याख्यान देते तो उनकी बोली ही बदल जाती थी मानो ऐसा मालूम होता जैसे उनके हाथ पैरों में एकदम शक्ति आगई हो और जवान ऐंठ गई हो। वे आठ दस अक्षरों से कम के बहुत शब्द बोलते थे, ढूँढ़ २ कर कठिन शब्द वह उस दिन के लिए छांटकर लाते थे। हम लड़के उनके व्याख्यान को तो कुछ नहीं समझ पाते थे पर उनके हाथ पैर के सञ्चालन और उनकी विचित्र वाक्य धारा को आश्चर्य से अवश्य देखते थे।

तुम पूछ सकते हो कि बात करने की कला क्या है? क्या एक विचित्र प्रकार की मूंह की आकृति, हाव भाव का परिवर्तन एक विशेष प्रकार के शब्दों का प्रवाह ही बात करने की कला है? क्या महान पुरुषों के विद्वतापूर्ण वाक्य स्थान स्थान पर आकाश में नक्षत्रों की तरह बिखेर देना क्या बात करने की कला है? क्या स्थान-स्थान पर धर्म-शास्त्रों और कथाओं के दृष्टान्त वार्तालाप की रोचकता

को नहीं बढ़ाते ? इसमें सन्देह नहीं कि बातचीत के सिलसिले में विद्वान् और महान पुरुषों के वाक्य और उनके जीवन की घटनाएँ रोचकता को अवश्य बढ़ा देती है पर बातचीत करने की कला में कुछ और भी है। सरल से सरल और सीधी से सीधी बातचीत भी कलापूर्ण और प्रभावोत्पादक हो सकती है। यथार्थ में बनावट बातचीत के सौन्दर्य को उसी प्रकार बिगाड़ देती है जिस तरह किसी कपड़े पर थोपा हुआ आवश्यकता से अधिक गोटा किनारी। जिस तरह अत्यन्त अधिक रंगसाजी करने से चित्र भद्दा और गँवारु हो जाता है उसी तरह बात करने का बनावटी ढङ्ग भी मनुष्यों में एक प्रतिक्रिया का भाव पैदा करता है। हमारे एक मित्र हैं, उनके विचार बुरे नहीं हैं परन्तु वे बात इतनी बना कर करते हैं कि उनका ढङ्ग मित्र-मंडली में एक मज़ाक का विषय हो गया है।

फिर बातचीत करने की कला क्या है ? अपने विचारों को दूसरों पर सरल और प्रभावोत्पादक ढङ्ग से बात करना दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करना उनके विचारों को बदल कर उनके हृदय पर अपनी बात को अङ्कित कर देना, सुनने वाले को ऊबने न देना, संक्षिप्त में अधिक बात कह देना, सारी घटना का चित्र की तरह चित्रित कर देना, अपने उठते हुए भावों से दूसरों के भावों को ओतप्रोत कर देना ही बात करने की कला है।

इसमें सन्देह नहीं है कि सभी युगों में बातचीत करने की कला एक महान् शक्ति रही है। आज के युग में तो बात करने—व्याख्यान देने की शक्ति के महत्व को बहुत अधिक बढ़ा ही दिया है परन्तु मुझे इसमें शक है कि किसी युग में भी शारीरिक शक्ति ने विचार करने और उन्हें व्यक्त करने की शक्ति पर विजय प्राप्त की हो। व्यास, नारद, शुकदेव, बुद्ध, महावीर, शङ्कराचार्य आदि सभी बोलने में चतुर थे। पिट, बर्न, क्रॉमवेल, अब्राहम लिङ्कन, लेनिन जो पाश्चात्य दुनिया को प्रगतिशील बना गये।

क्या तुम इस पत्र में यह जानना चाहोगे कि तुम इस कला में किस तरह निपुण हो सकते हो ? तो सुनो। मैं उसके लिये तुम्हें पाँच नियम बताता हूं :—

(१) दूसरों की बात धैर्य से और ध्यानपूर्वक सुनो अपनी बात कहने को व्यग्र मत हो।

(२) दूसरों के दृष्टिकोण समझो और अपने मतभेद को छोटे से छोटे बिन्दु पर केन्द्रित कर दो।

(३) अपनी नहीं उनकी बातों से प्रारम्भ करो।

(४) अपने मस्तिष्क को ठंडा रक्खो।

(५) अपनी बात को संक्षिप्त पर सजीव और स्पष्ट ढङ्ग से रक्खो ; जिस बात पर तुम्हारा मस्तिष्क स्वयं स्पष्ट नहीं है उसे मत कहो।

प्रत्येक मनुष्य यह चाहता है कि आप उसकी बात ध्यानपूर्वक बिना काटे हुए पूरी सुन लो। एक मनुष्य को इससे अधिक अपमान-जनक दूसरी बात नहीं मालूम होती कि तुम उसकी बात सुनने में लापरवाही प्रकट करो और उसकी बात बीच में ही काट दो। उसके हृदय में विचारों की बारूद भरी हुई है, यदि तुममें उसे उचित राह से बाहर निकल जाने देने का धैर्य नहीं है और यदि तुम उसे बीच में ही छेड़ देते हो तो वह सारी बारूद तुम्हारे ऊपर ही भड़क उठेगी। यदि तुम एक व्यक्ति की बात ध्यान पूर्वक सहानिभूति से पूरी तरह सुनते हो, फिर चाहे वह कितनी ही अमंगल क्यों न हो, तो तुम उसकी सारी विरोधी भावनाओं पर विजय प्राप्त कर लेते हो। यद्यपि उसके बाद तुम उसकी बात से सहमत न भी हो सको तो भी तुम उसके प्रारम्भिक विरोध को

जीत लोगे और उसे इस वातावरण में खींच कर ले जाओगे कि वह तुम्हारी बात ध्यान पूर्वक स्नेहपूर्ण वातावरण में सुन सके। इसलिए यदि तुन्हें किसी दूसरे व्यक्ति को अपने विचारों में परिवर्तित करना है तो उसे अपना सारा दृष्टिकोण तुम्हारे सामने रखने के लिए प्रोत्साहित करो और तुम एक सच्चे श्रोता की तरह उसे सुनो। स्मरण रक्खो बात करने की कला में जितना आवश्यक दूसरे की बात को धैर्य्य से सुनना है उतना अपनी बात कहना नहीं।

कई कम्पनियों का मैनेजिंग डाइरेक्टर होने के कारण और विशेष कर हिन्दुस्तान म्युचूअल एश्योरेन्स कम्पनी का प्रबन्धक निर्देशक होने के कारण कितनी ही बार ऐसे अवसर आते हैं जब मेरे धैर्य्य की परीक्षा होती है कई बार इस परीक्षा में मैं असफल हो जाता हूं परन्तु मैंने अनुभव किया है कि जब जब दूसरे की बात न सुनकर मैंने अपनी बात को जबर-दस्ती दूसरों के गले से उतारने की कोशिश की है, तब तब परिस्थिति बहुत जटिल हो गई है पर यदि मैंने दूसरे को अपनी बात कहने को उसकी इच्छानुसार समय दिया है तब तब मैंने समस्या को बहुत शीघ्र सुलझा लिया है।

एक वार कम्पनी के एक ऐजेण्ट ने एक व्यक्ति को १०,००० रू० की एक पालिसी बेची। बीमेदार को यह ख्याल हो गया कि एजेण्ट ने उसे गलत समझा कर बीमा ले लिया है, उसने अपनी किस्त देने से इन्कार कर दिया और वह हर व्यक्ति के सामने कम्पनी की बुराई करने लगा। वास्तव में एजेण्ट का उसमें अधिक दोष नहीं था, दूसरी कम्पनियों के एजेण्टों ने ही उसे भड़का दिया था। कम्पनी ने इन्स-पेक्टर को उसे समझाने के लिए भेजा परन्तु उन दोनों

में सख्त बातचीत हो गई। एक प्रभावशाली व्यक्ति को असन्तुष्ट छोड़ना बुद्धिमता नहीं थी! मैं स्वयं उसके पास गया उसने अपनी खयाली शिकायतें बड़े बड़े शब्दों में रखना प्रारम्भ किया। मैं धीरे धीरे २ उसकी बात सुनता रहा और बीच बीच में उसके प्रति सहानुभूति भी प्रकट करता रहा। वह करीब डेढ़ घण्टे तक उसके दिमाग में जो कुछ इकट्ठा था, बाहर निकालता रहा। यहाँ तक कि उसके पास कहने को कोई बात नहीं रह गई। तब मैंने उसकी बातों से शुरू किया जो सही थी और उन सही बातों को बतलाने के लिए मैंने उसे धन्यवाद दिया। इसके बाद उसे जो गलत कहानियां थीं उन्हें धीरे धीरे सुलझाने और समझाने की चेष्टा की। परिणाम? उसके मस्तिष्क से वे सब गलत शिकायतें हट गई और उसने कम्पनी के प्रति जो हानि पहुँचाने की चेष्टा की थी उसके लिए उसे दुःख हुआ। इसके विपरीत यदि मैं उससे बिना उसकी पूरी बात सुनते ही उससे कहता 'आप बिलकुल गलत कहते हैं, आपकी शिकायत निराधार है" तब! "मेरी बात गलत! निराधार!" यही बातें उसे बौखला देने के लिए काफी थीं।

यदि तुम किसी से भेंट करने जाओ तो सफल भेंट का रहस्य यह है कि तुम ध्यान से सुनो। एक अनुभवी व्यवसायी का मत है "उन्हें आगे क्या कहना है, इस बात में वे इतने डूबे रहते हैं कि वे अपने कान खुले नहीं रखते। बड़े बड़े आदमियों ने मुझ से कहा है कि वे अच्छे बात करने वालों से अच्छे सुनने वालों को अधिक पसन्द करते हैं परन्तु सुनने की योग्यता अन्य अच्छे गुणों की तरह बहुत कम दिखाई देती है।"

यदि तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारी बातों से घबड़ाने लगे

और तुम्हारे पीछे तुम्हारी बातों का मजाक उड़ावें तो तुम भी यह आदत सीख लो कि दूसरे की मत सुनो अपनी ही कहते जाओ ! यह सोचने लगो कि दुनियाँ मूर्ख है, उसकी बातों में क्या रक्खा है। तुम उसकी बातें सुनने में अपना समय क्यों बरबाद करो ? सारी बुद्धिमत्ता का टेका तुम्हारे पास है । निशाना लगे चाहे न लगे तुम अपनी बातों का गोला बारूद दागते चले जाओ । कोलम्बिया विश्व विद्यालय के अध्यक्ष डाक्टर बटलर का मत है "एक मनुष्य जो अपनी हीं बात सोचता है वह बुरी तरह से अशिक्षित है। उसने चाहे जितना भी पढ़ा हो, वह शिक्षित नहीं।"

यदि तुम आकर्षक वार्तालाप करने वाले बनना चाहते हो तो दूसरों की बातों में भी अपना आकर्षण रक्खो । यदि तुम अच्छे बातचीत करनेवाले बनना चाहते हो तो अच्छे सुननेवाले भी बनो ।

अपने मस्तिष्क को ठण्डा रक्खो

स्मरण रक्खो ! तर्क और नीतिपूर्ण बात केवल ठंडे और शान्ति मस्तिष्क से ही निकलती है। मस्तिष्क में क्रोध उत्पन्न होते ही उसका प्रभाव बिद्युत की तरह शरीर के एक स्नायु पर पड़ता है ; मस्तिष्क शरीर की स्नायु-प्रणाली का केन्द्र है, इस केन्द्र में हलचल होने से सारे शरीर में हलचल होने लगती है, यदि तुम किसी उत्तेजित व्यक्ति को देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि शरीर की सतह के ऊपर लालिमा की एक भिन्न रूप-रेखा आच्छादित हो गई है, उसी तरह जिस तरह एक जलते हुए कोयले के ऊपरी सतह पर एक प्रकाशवान लालिमा छा जाती है। उन जलते हुए कोयलों को बिना छूए हुए ही उसके नाम से आसपास के व्यक्ति पीड़ित होने लगते हैं । इसी तरह क्रोध से उत्तेजित व्यक्ति के शरीर से चिनगारियाँ निकल-निकल कर दूसरे व्यक्तियों को ग्रस्त करने लगती हैं। यदि तुम अपनी वाणी से क्रोध न भी प्रकट करो तब भी उत्तेजित स्नायु से निकलते हुए यह

क्षण दूसरे के मस्तिष्क पर तुरन्त प्रभाव डालते हैं । इसलिये यदि तुम चाहते हो कि तुम दूसरों के मस्तिष्क में अपने प्रति घृणा की चिनगारियाँ उत्पन्न न करो तो अपने मस्तिष्क को शान्ति रक्खो। योगेश्वर कृष्ण ने गीता में कहा है :—

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः ।
स्मृति भ्रंशादि बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात प्रणश्यति ॥

(क्रोध होने से अविवेक उत्पन्न होता है, अविवेकसे स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है, स्मरण शक्ति भ्रमित होने से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि के नाश से सर्वत्र ही नष्ट हो जाता है।)

इसलिये मित्रता पूर्ण वातावरण में बातचीत करने का अभ्यास करो। दूसरों के उत्तेजनापूर्ण होने पर भी यदि अपने मस्तिष्क पर काबू रख सको तो जैसे ही उसके क्रोध का बुखार उतरेगा, तुरन्त उसे अपने कार्य पर पश्चाताप होगा और जो विजय तुम अच्छे से अच्छे तर्क से नहीं कर सकते थे, वह विजय तुम्हें प्राप्त हो जायगी। जैसे ही तुम में क्रोध आ जायगा, तुम्हारी तर्क करने की शक्ति नष्ट हो जायगी और तुम अपना पक्ष कमजोर कर लोगे । अनेक वार तुमने यह लोगों को कहते सुना होगा कि मैं बहुत कुछ कहना चाहता था पर मुझे क्रोध आ जाने के कारण सब कुछ भूल गया।

एकबार एक प्रसिद्ध मित्र ने मुझे अपना एक अनुभव सुनाया। एक सज्जन उन पर बेहद बिगड़ रहे थे. उन्होंने आते ही मेरे उन मित्र पर अपना बुखार उतारना प्रारम्भ किया। वह शान्ति से सुनते रहे, बीच-बीच में कहीं मुस्करा भी देते परन्तु वे बोले नहीं। उन्होंने देखा इस समय यह मरखने बैल हो रहे हैं इनको सामने से आकर इनके सींग पकड़ कर इन पर काबू करना कठिन है, इस समय तो इनसे कुछ दूर पर ही रहें, जिधर यह भागें उधर ही साथ देना ही

उपयुक्त है। पहले तो वे इस चुप्पी से जिसकी उन्हें आशा नहीं थी और भी अधिक उत्तेजित हुए परन्तु फिर वे थक गये । तब इन्होंने कहा "आपका कहना ठीक है पर आप जरा बहुत थक गये हैं, तनिक विश्राम ले लीजिये" और उन्होंने फिर उन्हें ठंडा शरबत मँगवाकर पिलाया। उनके शान्ति हो जाने पर उन्होंने बहुत संक्षिप्त में विवादास्पद विषयों को छोड़ते हुए परिस्थिति को समझाया, वे उनसे सन्तुष्ट होकर चले गये।

बात करने की कला का एक और विषय है, वह यह है कि दूसरे की दृष्टि विन्दु देखो और अपनी बात को इस तरह कहो जिस तरह उस व्यक्ति का मस्तिष्क ग्रहण करने की अवस्था में है। जिस ओर से उसके मस्तिष्क के द्वार बने हैं, उधर अगर तुम्हारे विचार टक्कर लगाये तो उससे लाभ क्या है ? जिस ओर से मस्तिष्क के छिद्र खुले हुए हैं उसी ओर से तुम्हें अपने विचारों को प्रवेश कराना चाहिये। उसका झुकाव किस ओर है यह अध्ययन करो।

बातचीत करने का ढङ्ग

बातचीत करते समय तुम्हारा स्वर न तो बहुत तेज ही होना चाहिए जो कर्ण-कटु हो जाय और न ऐसा ही हो कि वह अच्छी तरह सुनाई ही न पड़े। उसमें जीवन होते हुए भी मधुरता होनी चाहिए। तुम्हारी बात स्पष्ट और अपने ध्येय तक पहुंचने वाली हो, घुमाव फिराव वाली बातों से सुनने वाला बहुत जल्दी घबड़ा जाता है। परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं है कि तुम बिना सुनने वाले का मस्तिष्क तय्यार किये हुए ही उस पर अपनी चोट पर चोट मारने लगो या जिसमें श्रोता के ऊपर यह प्रभाव पड़े कि तुम्हें केवल अपना ही स्वार्थ श्रेय है। तुन्हें उसके मस्तिष्क में प्रवेश करने से पूर्व कुछ चिकनाहट देने की आवश्यकता हो सकती है।

तुम्हारी भाषा वैसी हो, जिसे सुनने वाला सरलतापूर्वक समझ सके, तुम उन शब्दों को जिन पर अधिक महत्व देना चाहते हो, उन पर अधिक जोर दे सकते हो। बातों का उतराव चढ़ाव प्रभाव उत्पन्न करने में सहायता देता है परन्तु वह स्वभाविक होना चाहिए यदि उसमें बनावट होगी तो उसका प्रभाव उलटा पड़ेगा। बीच २ में कुछ चुने हुए वाक्य या दृष्टांत वार्तालाप में माधुर्य पैदा करने में सहायक होते हैं परन्तु उनका प्रयोग उचित और कम होना चाहिये। अपनी बात को संक्षिप्त भाषा में रखना चाहिए बड़े बड़े वाक्य और लम्बा चौड़ा फैलाव बात के प्रभाव और रस को नष्ट कर देता है। आज समय का बड़ा मूल्य है, आवश्यकता से अधिक समय लेने से श्रोता में चिड़चिढ़ाहट उत्पन्न होती है। हम प्रायः विषय से बाहर चले जाते हैं, इस तरह हम अपना और श्रोताका बहुत समय नष्ट करते हैं। तुम्हारी बात संक्षिप्त सजीव और श्रोता के मस्तिष्क को ग्राह्य होनी चाहिए।

आकर्षक व्यक्तित्व का पांचवा नियम है 'अच्छे बातचीत करने वाले बनो।

तुम कुछ कहने से पूर्व अपने मस्तिष्क को उस विषय से स्पष्ट कर लो, यदि तुम किसी विषय पर स्वय स्पष्ट और निश्चित नहीं हो तो उस विषय पर बातचीत मत करो। केवल अपने पक्ष में उन दलीलों को ही रक्खो जो अकाट्य है और जिसके सम्बन्ध में आपत्ति नहीं हो सकती। यदि कोई विशेष और निश्चित विषय पर वार्तालाप करना है अथवा किसी विशेष व्यक्ति से भेंट करने जाना है तो उससे पूर्व उसकी तय्यारी करलो। उस विषय की आवश्यक सभी बातों को देख लो, समझ लो और सम्भव हो तो उससे अपने बात करने की रूपरेखा भी तैयार कर लो। यह मत समझो कि तुम ऐसा करके अपना समय नष्ट कर रहे हो, वास्तव में जो काम तुम घण्टों

की बहस से भी नहीं कर सकते यदि तुमने उस विषय में पूर्व तय्यारी कर ली है तो बहुत कम समय में उस कार्य को समाप्त कर सकते हो। अपने पक्ष में तुम कमजोर दलीलें देकर अपने पक्ष को कमजोर करते हो। अधिक बात करने से नहीं अकाट्य बात करने से ही तुम विश्वास पैदा कर सकते हो।

तुम्हारा पिता।

सफलता की एक नई पद्धति

(;५)

प्यारे बेटे !

मैंने अपने पूर्व पाँच-छः पत्रों में, तुम्हें आकर्षक व्यक्तित्व और और सर्व-प्रिय बनने के कुछ रहस्य बताए थे, परन्तु तुम्हें उनको पढ़ कर उनका अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिए कि मैं यह चाहता हूँ कि तुम सदा 'ठकुर-सुहाती' ही कहते रहो, अपने विचार कुछ न रक्खो और न तुम दूसरों को अपने विचारों में परिवर्तित करने की चेष्टा करो। नहीं ! मेरा यह आशय कभी नहीं है। भला ऐसे व्यक्ति अपना और समाज का क्या कल्याण कर सकते हैं ? उच्च व्यक्तित्व के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमारे कुछ निश्चित सिद्धान्त—विचार हों और हम अपने उन विचारों और सिद्धान्तों के प्रति अपने चारों ओर वातावरण में आकर्षण पैदा कर सकें। निस्सन्देह हठ, द्वन्द, भर्त्सना से संसार में तुम बहुत कम मनुष्यों को परिबर्तित कर सकते हो। नहीं ! एक पिता अपनी सन्तान को भी केवल भय और ताड़ना से ही एक विशिष्ट ढांचे में नही ढाल सकता।

फिर हम मनुष्यों को अपने अनुकुल ढालने के लिए क्या करें ? इसके लिए एक नई वैज्ञानिक पद्धति का आगे के पत्रों में

ज़िक्र करूंगा। मैं उस नई पद्धति के मोटे २ पाँच नियम रखना चाहता हूँ :—

(१) तर्क और विवाद से मत जीतो।

(२) दूसरों के दृष्टिकोण को समझो और अपने मतभेद को एक छोटे से छोटे बिन्दु पर केन्द्रित कर दो।

(३) विश्वास उत्पन्न करने को एक नई पद्धति अपनाओ।

(४) अपने विचारों को दूसरों की सम्पत्ति बनाओ।

(५) पकड़ी जाने से पूर्व ही अपनी गलतियों को बिना 'अगर-मगर' के स्वीकार करो।

तर्क को विवाद से मत जीतो

प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ने अपने भारत भ्रमण के वर्णन में एक बुद्धिमान (?) पुरुष का जिक्र किया है जो पाटलिपुत्र के पास किसी छोटे नगर में रहता था। इस मनुष्य ने अपने पेट के चारों ओर ताँबे के पत्तर का एक मोटा खोल चढ़ा रक्खा था, सिर पर एक मशाल जलती रहती थी और लकड़ी टेक टेक कर वह बड़ी अकड़ से चलता था। फाहियान ने इस विचित्र पुरुष को देखकर इसका कारण पूछा? उसने कहा "मेरे पेट में इतनी बातें भरी पड़ी हैं कि मुझे डर है कि मेरा पेट न फट जाय, इसीलिये मैंने उस पर ताँबे का खोल चढ़ा रक्खा है और दिन में भी मशाल लेकर मैं इसीलिये चलता हूं क्योंकि मैं संसार के मूर्खों में केवल एक ही बुद्धिमान पुरुष हूँ, मुझे उनके अज्ञान के अन्धकार को देखकर बड़ी दया आती है इसलिये मेरे दिमाग से यह प्रकाश निकाल कर मैं संसार को आलोकित करना चाहता हूं।

अगर तुम राजनीतिक बन्दियों के किसी भी कैम्प में देखो तो तुम्हें आज ऐसे बुद्धिमान भरे दिखलाई पड़ेंगे। उनके पेट में इतनी

बातें भरी पड़ी हैं कि उन्हें भय है कि अगर वे उन्हें जल्दी जल्दी नहीं निकालेंगे तो उनका पेट फट जायगा । इसलिये यहाँ दिन, रात—महीनों, वर्षों तर्क ! बहस ! वाद-विवाद चलता रहता है । पहिले आर्य समाजी इस 'लट्ठमार' तर्क के लिये प्रसिद्ध थे परन्तु अब इसने काँग्रेस में भी काफी प्रवेश कर दिया है । इसवार मैंने निश्चय किया कि मैं इस सतत् चलने वाले विवाद और 'तर्क के लिये किये गये तर्क' से दूर रहूंगा । परिणाम केवल इतीसे लोगों के अनुमान हैं — मैं बड़ा ही तर्क का समझदार व्यक्ति माना गया हू और मेरी सम्मतियां में गम्भीरता समुचित है ।

तुमने कुछ शास्त्रार्थ सुने होंगे । क्या कभी तुमने उनका कुछ परिणाम भी निकलते देखा है ? हमारे तर्क और बहस प्रायः एक चक्र में घूमते हैं । तुम जैसे ही तर्क में प्रवेश करते हो तुम्हारे लिए वह एक बौद्धिक युद्ध हो जाता है । तुम प्रति पक्षी पर हावी होना चाहते हो दूसरा तुम पर बौद्धिक विजय प्राप्त करना चाहता है ।

डेल कार्नेगी ने अपनी पुस्तक में एक मनोरञ्जक घटना का उल्लेख किया है । गत महायुद्ध (१६१४—१८) में सर रांस ने दुनियां की आधी परिक्रमा तीस दिन में करके विश्व को चकित कर दिया । आज; इसका कुछ भी महत्व नही है परन्तु उस समय यही एक बड़ी बात थी ; उनके पास ही जो सज्जन बैठे थे उन्होंने एक मनोरञ्जक कहानी सुनाई जो इस वाक्य पर आधारित थी "There's a divinity that shapes our ends, rough—hard than how we will". उन्होंने बताया कि वह वाक्य बाइबिल का है । बाइबिल का ! यह मैं भली प्रकार जानता था कि यह वाक्य शेक्सपीयर का है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं था । कारनेगी ने उनकी गलती

सुधारना चाहा इस पर एक अच्छा खासा विवाद खड़ा हो गया। कहानी कहने वाले सज्जन अपनी हठ पर अड़ गए इस गलती को स्वीकार कर लेना उनकी शान के खिलाफ था! उन्होने अपने दावे को पूर्ण निश्चय के साथ में पेश किया। इन्होंने स्वयं बाइबिल में उसे अपनी आंखों से पढ़ा था। शेक्सपीयरी की रचनाओं का पूर्णतः अध्ययन करने वाले डेल कारनेगी के एक मित्र श्री गेमन्ड भी वहीं बैठे थे, उन्होंने कारनेगी को चुप रहने का संकेत किया और फिर उस व्यक्ति को सुनाते हुए कहा "डेल! तुम ग़लती पर हो। यह सज्जन सही हैं! वाक्य बाइबिल का ही है।" बाद को जब वे दोनों पार्टी से लौट रहे थे डेल ने गेमन्ड से कहा "फ्रेंक! तुम्हें विदित था कि वाक्य शेक्सपियर का है फिर तुमने उसे बाइबिल का क्यों बताया?" गेमन्ड ने उत्तर दिया, "हा! मैं यह जानता था कि यह वाक्य शेक्सपियर का है पर उससे यह कहना व्यर्थ था। परन्तु हम एक दावत के मेहमान थे। इससे लाभ क्या कि हम वह प्रमाणित करें कि वह व्यक्ति गलती पर है? यदि वह अपने चेहरे को बचाना चाहता है तो उसे ऐसा क्यों न करने दिया जाय? उसे आपकी सम्मति की आवश्यकता नहीं थी, वह आपके संशोधन को ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत नहीं था। फिर उससे विवाद करने से क्या लाभ?"

हमें अपनी स्पष्ट और सही राय देना आवश्यक है और यदि हम ग़लती पर चलने वाले लोगों को सही रास्ते पर ला सकते हैं तो यह हमारा कर्त्तव्य है परन्तु जहाँ इसका उपयुक्त वातावरण न हो तो हम तर्क से उसकी गलती दिखा कर क्या उसे बदल सकते हैं। तो यह हमारा कर्त्तव्य है परन्तु जहाँ इस का उपयुक्त वातावरण न हो तो हम तर्क से उसकी गलती

दिखा कर क्या उसे बदल सकते हैं? ऐसे वातावरण में तो वह अपनी ग़लतियों को और भी दृढ़ता से पकड़ेगा। प्रायः दस विवादों में से नौ विवादों में दोनों पक्ष इसी मरिणाम पर पहुंचते हैं कि उनका ही पक्ष ठीक था वे उस पर और भी दृढ़ हो जाते हैं।

और यदि अपने प्रबल प्रमाणों से तुम दूसरों पर बौद्धिक विजय प्राप्त भी कर लो तब भी तुम अपने हृदय का परिवर्तन नहीं कर सकते। तुम तर्क की विजर प्राप्त करने पर भी उसके हृदय को बिना बदले ही जोड़ जाते हो। तुम उसे बौद्धिक नीचा दिखा कर भले ही असनी मानसिक तुष्टि पैदा कर लो पर इससे पतिपक्षी के हृदय में तुम्हारे लिए घृणा ही उत्पन्न होगी। अपने ऊपर स्वेच्छा से कौन विजय स्वीकार करता है? इसलिए तर्क या विबाद मनुष्यों के हृदय परिवर्तन का साधन नहीं है। यदि तुम मनुष्यों को बदलना चाहते हो तो उसके मस्तिष्क का नहीं हृदय का स्पर्श करो। महात्मा गान्धी इसी 'हृदय परिवर्त्तन पर विश्वास करते हैं।" वृद्ध बेन फ्रेन्क लिन कहा करता था—

"यदि तुम तर्क करो, तो उस तर्क के बल पर सम्भव है कि तुम विजय प्राप्त कर लोगे परन्तु यह विजय खोखली विजय होगी क्योंकि तुम कभी भी प्रति पक्षी की सद्भावना प्राप्त नहीं कर सकोगे।"

एक व्यवसायी को तो तर्क और विवाद से विष की तरह बचना चाहिये क्योंकि सम्भव है वह विवाद में ग्राहकों को जीत ले परन्तु व्यवसाय में वह उन्हें खो देगा! हमने हिन्दुस्तान म्यूचुअल ऐश्योरेन्स कम्पनी के ऐजेण्टों के लिए जो हिदायतें लिखीं उसमें सर्व प्रथम यह थी 'विवाद में मत पड़ो।'

अब्राहम लिंकन ने एक बार एक कर्मचारी को अपने साथी के साथ एक विवाद में पड़ने के लिए ताड़ना की "कोई भी व्यक्ति जो अपने आपका सर्वोत्कृष्ट उपभोग करने का निश्चय कर चुका है। व्यक्तिगत विवाद में पड़ने के लिए समय नहीं निकाल सकता। उसके भी कम वह उसके परिणाम, जिसमें अपने पर काबू खोने और क्रोध सम्मिलित है, उठाने को तय्यार हो सकता है बड़ी २ चीजें जिनपर तुम्हें बराबर ही अधिकार दिखलाई दे। और छोटे २ अधिकार जो स्पष्टतः तुम्हें अपने ही दिखलाई दें वे दूसरों को छोड़ दें। कुत्ते से अपने रास्ते के लिए झगड़ने और उसके काटे जाने से उसे मार्ग दे देना अच्छा है। कुत्ते को मार डालने पर भी उसका काटा हुआ अच्छा नहीं होता।"

गान्धीजी ने हजारों लाखों आदमियों को बदला है, उन्होंने उनके जीवन की धारा ही पलट दी है। यदि कोई मनुष्यों को वदलने की कला सीखना चाहता है तो उसे वह महात्मा गान्धी से सीखनी चाहिये। वह तर्क और विवाद से मनुष्यों को बदलने की चेष्टा नही करते हैं। त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरञ्जन दास भारतवर्ष के सर्वोच्च प्रतिभाशाली वकील थे। उनका सारा जीवन तर्क और वहश में ही बीता था। त्यागमूर्ति पं० नेहरू को मैंने दो एक मुकद्दमों में बहश करते हुए सुना हैं। एक बड़े मुकद्दमें के सिलसिले में वे कोई छः हफ्ते आगरा रहे थे। इन्हें दो हजार रु० रोज फीस मिलते थे। किस लिए? बहश के लिए। तुम क्या समझते हो महात्मा जी तर्क और बहश में इनको माति पाते? और क्या ये सहयोग मूर्ति बन पाते? पर यही पं० नेहरू असना सर्वस्व त्याग कर महात्माजी का अनुसरण करने लगे।

असहयोग आन्दोलन से पूर्व देशबन्धु चितरञ्जनदास महात्मा जी के असहयोग कार्य-क्रम के घोर विरोधी थे। सारा बंगाल

उनके पीछे था। नागपुर कांग्रेस, जहाँ असहयोग का प्रस्ताव उपस्थित होने वाला था, वहां गाड़ी के डिब्बों में भर भर कर बंगाल के डेलीगेट नागपुर जा रहे थे। इनमें से कुछ तो लठैत डेलीगेट भी थे। नागपुर का सारा वायुमण्डल ही उत्तेजना से परिपूर्ण था परन्तु क्या वहाँ लम्बी चौड़ी तर्क और बहस हुई। नहीं ! गांधीजी और देशबन्धु एक तम्बू में बैठे और दोनों सहमत होकर निकले। क्या गान्धी जी बहश में विजयी होने चितरञ्जनदास के साथ बहश और विवाद के मैदान में उतरे। नहीं ! उन्होंने उनके मस्तिष्क को नहीं हृदय को स्पर्श किया। नागपुर कांग्रेस में बिना कठिनाई के असहयोग का प्रस्ताव पास हो गया और इस आंदोलन में देशबन्धु उनके सबसे बढ़े समर्थक थे।

अपने विचारों को दूसरों पर जबरदस्ती मत लादो, उन्हें स्वयं ग्रहण करने दो। दूसरों को बदलने का उपाय विवाद नहीं, उन्हें उसकी सभ्यता और आवश्यकता का अनुभव कराना है। जो विवाद से नहीं हो सकता। वह परिवर्तन के बजाय दुराग्रह को मजबूत करता है इसलिए मनुष्यों को बदलने का प्रथम नियम है "विवाद से बचो"

तुम्हारा पिता।

दूसरों के दृष्टिकोण को समझो और अपने दृष्टिकोण को एक छोटे से छोटे बिन्दु पर केन्द्रित कर दो

(२६)

प्यारे बेटे,

तुमने कभी यह भी सोचा है भगवान की सृष्टि कितनी विशाल और निवतीर्ण है और उसके अनुमान में हमारी पृथ्वी कैसी छोटी सी चीज है। हमारी पृथ्वी की तोल १६००० शंख मन है परन्तु यदि इसको एक सेर मान किया जाय तो सूर्य ८००० मन का, वृहस्पति पौने आध मन का, शनि २ मन १३ सेर का, यूरेनस १७ सेर बजन का है। कहाँ एक सेर और कहाँ आठ हजार मन। यही सूर्य और तृथ्थी की तुलना है? और तुम यह जानते हो कि कुछ ग्रह और नक्षत्रों का पृथ्वी से कितना अन्तर है। यदि हम ३०० प्रति मील छलने वाले एक हवाई जहाज में भिन्न भिन्न ग्रहों और नक्षत्रों की मात्रा करें तो हम चन्द्रमा के ३० दिन, मंगल को १२ वर्ष, बुद्ध १८ वर्ष, शुक्र को ६ वर्ष, सूर्य को ३५ वर्ष, शनि को २८६ बर्ष, नेपच्यून को १०७१ वर्ष, प्लूटो को १२५७ वर्ष, यूटेनस को ६११ वर्ष, वृहस्पति को १३६ वर्ष और निकटतम नशरम को पहुँचने में १००० वर्ष लगेंगे। इतनी विशाल है यह सृष्टि और इतनी छोटी है हमारी यह पृथ्वी। और इस पृथ्वी में भी हम अथाह

जलाशय में एक जलबिंदु के समान है। फिर यदि हम सर्वज्ञानी होने का दावा करें तब ?

इसमें सन्देह नहीं है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने में आत्म-विश्वास होना चाहिए और उसे अपने विचारों में आस्था चाहिए परन्तु यह विचार करना ठीक नहीं है कि मैं जो कुछ सोचता हूं, वही सही है और दूसरों के दृष्टिकोण और विचारों का मूल्य ही क्या है ? उसे समझने में मैं अपना दिमाग क्यों खराब करूँ ? उसमें तथ्य ही क्या है ? यह मनुष्य रेल के उस इञ्जिन के समान है जो सिगनल आदि सामने की चीजों को बिना देखते हुए ही अपनी ताकत के बल पर अपने मार्ग को रौंदता जाता है ? क्या उसका मार्ग खतरे से खाली है।

एक कहानी है। कुछ अन्धों ने हाथी कभी नहीं देखा था। एक बार एक हाथी उधर आ निकला। एक ने हाथी के पैर को पकड़ कर कहा 'हाथी खम्भे सा है। दूसरे ने कान पकड़ कर कहा "हाथी सूप सा है।" तीसरे ने हाथी की पूँछ पकड़ कर कहा 'हाथी मोटे रस्से की तरह है।" और वे आपस में लड़ने लगे। वे सब सही थे पर फिर गलत थे। कुछ इसी तरह का हमारा ज्ञान दुनिया के सम्बन्ध मे है। यदि हम आपस में न लड़कर एक दूसरे के दृष्टि विन्दु को समझें तो हम सत्य के बहुत निकट पहूँच सकते थे। आज दुनियाँ में अनेकों धर्म और मत हैं इनके पीछे सैकड़ों लड़ाइयों और लाखों मनुष्यों के रक्त पात की कहानी छिपी हुई है परन्तु अगर तुम इनके आधारभूत तत्वों को देखो तो तुम्हें उनकी समानता देख कर आश्चर्य होगा। सभी एक सत्य की खोज में थे और एक हीं रास्ते की ओर जा रहे थे परन्तु उन्होंने अपनी असहिष्णुता के कारण अपने मार्ग को रक्त रञ्जित और दुःखद बना दिया।

यदि तुम दुनिया के इतिहास को देखो तो तुम्हें प्रत्येक पृष्ठ पर मतभेद की कहानियाँ लिखी हुई मिलेंगी। कुछ लोगों का मत तो यह है कि मतभेद ही जीवन है। मतभेद का तात्पर्य यह है कि दोनों पक्ष सत्य की खोज में चल पड़े हैं और उसमें दो दृष्टिकोण उपस्थित हो गए हैं। यह बुरा नहीं है इन दोनों रास्तों की खोज करते करते वह सही मार्ग पर पहुंच ही जांयगे। यदि इसमें कोई बाधक है तो वह अहमन्यता—हठ ही हैं।

हज़ारों वर्ष तक पृथ्वी के महान से महान व्यक्ति यही अनुमान करते रहे कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। इनमें बड़े बड़े बुद्धिमान व्यक्ति थे जिन्होंने विश्व और ब्रह्म के सम्बन्ध में बड़े बड़े अटल और सत्य सिद्धांत निकले थे। आज के मनुष्य उनसे अधिक सत्य के पास पहुँच गए हैं यह बात नहीं है परन्तु आज विश्व में बहुत कम व्यक्ति यह जानते हैं कि सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है आज तो वे इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर घूमती है। कल जो वैज्ञानिक सत्य थे, वे आज असत्य प्रमाणित हो जाँय। तब हम अगर यह सोच बैठें कि हम हीं सत्य तक पहुँच गए हैं और अब हमें आगे खोजने की जरूरत नहीं है तो यह कितनी मूर्खता है।

मैं यह नहीं कहता कि हमें अपने विचारों पर विश्वास नहीं रखना चाहिए या दुलमुल यकीन" होना चाहिए यह तो बहुत बुरा है परन्तु हमें आंखे खुले रखना चाहिए और अपने को दुरुस्त करने को तैयार रहना चाहिए। हमें दूसरे के दृष्टि विन्दु को समझना चाहिए और हमें यदि ऐसा मालूम हो कि दूसरे की बात में कुछ सत्यता है और तुम गलत रास्ते पर हो तो तुम्हें अपनी गलती को सुधार लेना चाहिए।

यदि तुम यह समझते हो कि दूसरा व्यक्ति गलत रास्ते पर भी

जा रहा था है तब भी उसके दृष्टि विन्दु को समझने की चेष्टा करो। यह देखो कि उसका मस्तिष्क किस ओर काम कर रहा है ? जब तक तुम उसके धरातल को नहीं समझोगे, उस समय तक उससे झगड़ने से कोई लाभ नहीं। तुम्हें यदि उसे सही रास्ते पर लाना है तो तुम्हें उसके उसी धरातल पर मिलना होगा। वह जहाँ जिस मार्ग में भटक रहा है, वहाँ यदि तुम न पहुँचो तो दूर से टक्कर मारने से ही क्या लाभ है। उससे तो केवल दिमागी खराश ही पैदा होगी।

यदि तुम मनुष्यों को बदलना चाहते हो तो उस व्यक्ति की परिस्थिति, उसकी कठिनाई, उसकी विचार धारा में स्वयं अपने को रक्खो और देखो फिर ग़लती कहाँ हैं ? यदि एक मनुष्य कहे कि सूर्य पश्चिम की ओर है, दूसरा कहे दक्षिण की ओर है, तीसरा कहे उत्तर की ओर है। सम्भव है उनकी तीनों की परिस्थिति से यह तीनों बातें सही हों। इसीलिए पहिले अपने को उनकी दिशा में रक्खो और फिर यदि कोई ग़लती मालूम हो तो दुरुस्त करो।

यदि तुम दूसरे के दृष्टि बिन्दु को बिना समझे तर्क करते रहो जो वह एक ऐसी खेती कर रहा है, जिसका अन्त में परिणाम कुछ नहीं निकलता है। तुम अपनी कहते रहो, वह अपनी कहता रहे, और अन्त में सम्भव है उसका अन्त पारस्परिक अशान्ति में ही हो। व्यवसायी के लिए तो दूसरे के दृष्टि बिन्दु को समझना बहुत ही आवश्यक है। उसे अपनी बात कहने से पूर्व उसे अपने ग्राहक के मस्तिष्क को समझना चाहिए।

दूसरों को जो विषय प्रिय हैं, उस विषय में अपनी बात प्रारम्भ करना भी सफलता का एक श्रेष्ठ साधन है। इससे मनुष्य के मस्तिष्क में अपनी बात प्रवेश कराने से पूर्व उसके दिमाग़ में ज़रा सा तेल दे लो। इसका एक मनोरञ्जक उदाहरण एक व्यक्ति ने

इस प्रकार दिया है। एक व्यक्ति एक संस्था के लिए कुछ दान लेने के लिए एक धनी सज्जन के पास गये, बहुत ही कम लोग इससे कुछ प्राप्त करने में सफल होते थे, गृह निर्माण इनका एक व्यसन था। अभी उन्होंने एक नई कोठी और बाग बनवाया था उसका नकशा उन्होंने अपने मस्तिष्क से ही बनाया था और उसका उन्हें बड़ा गौरव था। इन्होंने जाते ही उनकी कोठी और बाग की बात छेड़ दी और उनके गृह निर्माण के ज्ञान की प्रशंसा करते हुए अपने भी कई सुझाव रक्खे। परिणाम ? उसके मस्तिष्क को उन्होंने अपनी ओर तुरन्त ही आकर्षित कर लिया। उन्होंने उन्हें अपनी कोठी और बाग दिखाया और उनके सुझाव के लिए धन्यवाद दिया। फिर उन्होंने पूंछा 'परन्तु आपने आज किस लिए कष्ट किया ?" और फिर उन्होंने अपनी आवश्यकता बताई। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उनकी यह आवश्यकता है पूरी हो गई। कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी बात को दूसरों के प्रिय विषय से प्रारम्भ करो।

इस सम्बन्ध में एक और अत्यन्त आवश्यक नियम है कि अपने मतभेद को छोटे से छोटे बिन्दु पर केन्द्रित कर दो। इसका मतलब क्या है ? प्रथम यह समझने की चेष्टा करो कि तुम्हारा दूसरे व्यक्ति से मतभेद का मूल आधार क्या है ? ऊपर की छोटी मोटी मतभेद की बातों पर ध्यान मत दो, उन पर तर्क करने से कोई लाभ नहीं है। अपने मतभेद की मूल बातों को पकड़ो और यह दिखलाने की चेष्टा करो कि तुम्हारे और उनके बीच की खाई बहुत चौड़ी नहीं है और वह इस खाई को आसानी से पार करके तुम तक पहुँच सकता है। इस खाई के अन्तर को अधिक चौड़ा दिखाने से क्या है ?

हम अनेक बार अपने तर्क में पत्तों और डालियों पर विवाद

करते रहते हैं और जब तक पहुँचने की चेष्टा नहीं करते, उसका परिणाम यह होता है कि हम ऊपर ही ऊपर चक्कर करते रहते हैं परन्तु हम यदि विवाद की जड़ ही काट दें तो डालियां और पत्ते कहां रहेंगे ? इसीलिए मतभेद की चेष्टा न करके अपने मूल उद्देश्य की पूर्ति करने की चेष्टा करनी चाहिए।

युद्ध में दोनों ओर की सेनाएँ इधर उधर के गाँवों और आवश्यक छोटे शहरों पर कब्जा करके अपनी शक्तियाँ बर्बाद नहीं करते, केवल राजधानी और कुछ केन्द्रीय स्थानों को जीतने की कोशिश करता है। जर्मनी में हवाई जहाज़ों ने इस विश्व युद्ध में लन्दन पर ही गोलाबारी करने में क्यों अपनी अधिक शक्तियां लगाईं और अब मित्रशक्तियाँ हजारों टन गोला बारूद बर्लिन पर ही क्यों फैंक रही हैं ? केन्द्र उत्पत्ति के स्थानों को छिन्न भिन्न कर देने से शत्रु की सारी शक्तियाँ ही छिन्न भिन्न हो जाँयगी। यही बात मतभेद के किले के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। मुख्य द्वार के टूटते ही किले पर कब्जा करना कठिन नहीं है।

मनुष्यों के मतभेद पर विजय प्राप्त कर उन्हें बदलने का दूसरा नियम है दूसरों से दृष्टि कोण को समझो और अपने मतभेद का छोटे से छोटे विन्दु पर केन्द्रित करदो।

तुम्हारा पिता।

———

अपनी गलती बिना 'अगर-मगर' के स्वीकार करो।

(२७)

प्यारे बेटे !

आज मैं जैसे ही तुम्हें यह पत्र लिखने बैठा, मुझे समाचार मिला कि महात्माजी बीमारी के कारण रिहा कर दियेगये। यहाँ इस समाचार से जो खुशी हुई है उसका तुम अन्दाज़ा नहीं लगा सकते। उनकी विचारधारा के जो कट्टर-विरोधी हैं, वे भी बड़े खुश दिखलाई देते हैं। मैं जब यह देखता हूं तो हैरान रह जाता हूं। मुझे अनुभव होता है कि राष्ट्र की आकांक्षाएँ आज इस एक दुबले-पतले व्यक्ति में केन्द्रित है। बहुत कम राष्ट्रों को एक ऐसा नेता प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो अपने देश के इतने अधिक निवासियों का अटूट विश्वास प्राप्त करने में सफल हुआ हो।

"महात्माजी की इस सफलता का कारण क्या है? "एक मित्र पूंछते हैं। उनमें पक्ष और विपक्ष के सभी व्यक्तियों का विश्वास होने का एक सब से बड़ा कारण यह है कि जैसे ही उन्हें अपनी कोई ग़ल ी मालूम होती है, वह उस पर मुलम्मा चढ़ाने की कोशिश नहीं करते और इस बात का इन्तज़ार ही करते हैं कि कोई दूसरा उनकी ग़लती को पकड़ कर उन्हें दिखलाए तभी वे उसे स्वीकार करें, वे स्वयं ही अपनी ग़लती का ढिंढोरा ऊँची से ऊँची मीनार

पर चढ़कर करने लगते हैं। भला फिर अपनी ग़लतियों को छिपाने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? उन्होंने अपनी 'हिमालय जैसी' भूलों को कईवार स्वीकार करके अपने प्रतिपक्षियों को चकित कर दिया है प्रतिपक्षी जब सोच ही रहे थे कि वे गांधी जी की गलतियों का ढिंढोरा पीटे, उससे पूर्व ही उन्होंने स्वयं अपनी ग़लती का ढिंढोरा पीटकर वह अस्त्र उनके हाथों से छीन लिया। ग़लती को स्वीकार करके वे केवल दुश्मन के ही नही बचा जाते हैं बल्कि वे अपने लिए एक ओर -ो। नैतिक आधार कायम कर लेते हैं। आज प्रत्येक मनुष्य को यह विश्वास है कि गाँधी जी हटपूर्वक किसी ग़लत पक्ष का समर्थन नहीं करेंगे। उनका कोई कट्टर से कट्टर दुश्मन भी आज उन पर यह लांछन नहीं लगा सकता कि वे एक मिनट भी किसी ग़लत या असत्य पक्ष को आगे बढ़ाते हैं।

अपनी ग़लती को पकड़े जाने का इन्तज़ार करने से अथवा उसे 'अगर-मगर' के साथ स्वीकार करने से तुम निसन्देह अपने पक्ष को दूसरों के सामने निर्बल बना लोगे। किसी भी चीज का इतना मत वैज्ञानिक प्रभाव नहीं पड़ता, जितना अपनी ग़लती स्वीकार करने का पड़ता है।

आगे चलकर तुम्हें यदि कोई अपना तर्क या पक्ष ग़लत मालूम हो तो उसे स्वयं ही बिना 'अगर-मगर' के स्वीकार कर लो खुले दिल से स्वीकार की हुई अपनी ग़लती न केवल तुम्हें एक भद्दी स्थिति में पड़ने से ही बचायेगी अपितु तुम्हारी स्थिति को और भी मज़बूत करेगी। तर्क में यदि तुम्हारी अनेक बातें सत्य, असत्य और मान्य हों परन्तु यदि उसमें एक भी असत्य बात मिली हुई हो तो वह उन सब को कमज़ोर कर देगी। जिस तरह पानी का बढ़ता हुआ प्रभाव दीवार के उस भाग को जो कमजोर है तोड़कर सारे मकान को ढहा देती है उसी तरह कुछ ग़लत बातें अथवा तर्क के

मिश्रण से तुम्हारा सारा ही पक्ष निर्बल हो जाता है । तुम्हीं सोचो यदि तुम्हें कोई सत्य बातों के साथ ऐसी बात कही जाय जो पूर्णतः झूँठ है और जिसका तुम्हें स्वयं ज्ञान है तो इसका तुम पर क्यों प्रभाव पड़ेगा ?

इसलिये यदि तुम्हें अपनी ग़लती मालूम हो जाय तो अपनी गलती को मंजूर करते हुए अपने पक्ष का समर्थन करो। अपनी गलती स्वीकार करते हुए फिर तुम जिस बात का समर्थन करोगे, उसका जादू का सा असर पड़ेगा। तुम यदि अपनी ग़लती को स्वीकार कर लोगे तो तुम दूसरे के हठ के घुटनों को तोड़ दोगे।

एक प्रसिद्ध कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर ने मुझे एकबार अनुभव बतलाया। उनके यहां का एक हिस्सेदार बड़ा बिगड़ रहा था, उसने कम्पनी के ऊपर अदालत में कई मुकद्दमे चला रक्खे थे और वह कम्पनी की हर जनरल मीटिंग में विरोध के तूफान का नेतृत्व करता था। वास्तव में उसका मत बहुत अनुचित और अन्यायपूर्ण था परन्तु उसके मामले में कम्पनी ने एक छोटी सी गलती कर दी थी। कम्पनी से जो भी व्यक्ति जाता वह उसके अनुचित कार्य की तो बड़ी व्याख्या करता परन्तु कम्पनी ग़लती की बाबत कुछ न कहता, उसको कितनी ही 'अगर-मगर' से उसे छिपाने की कोशिश करता। परिणाम! इससे वह उसे और भी अधिक उत्तेजित करके ही छोड़ जाता। एकबार स्वयं मैनेजिंग डाइरेक्टर भी उससे मिलने गये। उसने शान्ति पूर्वक उसके सारे पक्ष को धैर्य्य से सुना और इसके बाद उसने जो सबसे पहली बात की वह जोरदार शब्दों में कम्पनी द्वारा की हुई ग़लती स्वीकार करना था। उसने कहा 'आपके साथ जो व्यवहार उस मामले में किया गया वह बिलकुल अनुचित था कम्पनी के पास ऐसा करने का कोई कारण नहीं था। इस पर आपने जो कुछ किया सम्भवतः यदि

में भी आपकी परिस्थिति में होता तो यही करता परन्तु कम्पनी की उस गलती के लिये क्या आप अपने को हानि पहुँचाना पसन्द करेंगे। कम्पनी की हानि आपकी ही ता हानि है। क्या आप इस बात को पसन्द नहीं करेंगे कि कम्पनी की उस ग़लती को भूलते हुए अपने अन्य आरोपों पर पुनः विचार करें। परिणाम ! उनके स्नायुओं का तनाव ढीला हो गया, जो अस्त्र उसने कड़ी मुट्ठी से पकड़ रक्खे थे, वे ढीले पड़कर गिर गये।

दूसरों की गलतियों का जिक्र करने से पूर्व यदि तुम अपनी ग़लतियों का जिक्र कर दो तो तुम उस सारे विवाद की कटुता को बहुत कम कर देते हो। ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है जो ग़लती न करता हो। ईश्वर ही सम्भवतः ऐसी एक शक्ति है, जिससे ग़लतियां नहीं होतीं। यदि तुम दूसरों को अपनी ग़लतियां स्वीकार करने और दूर करने के लिये उत्साहित करना चाहते हो तो अपनी ग़लतियों के उल्लेख से प्रारम्भ करो।

मनुष्य का यह स्वभाव है कि अपनी ग़लती स्वीकार करते हुए उसके प्रतिष्टा के झूँठे भाव पर एक धक्का सा लगता है परन्तु यदि तुम उसकी ग़लती दिखलाने से पूर्व यह बतलाओ कि ऐसी ग़लती करना कोई अस्वभाविक नहीं है और तुम से भी कभी-कभी ऐसी ग़लतियाँ हुई हैं तो उसके सही रास्ते पर आने में प्रतिष्टा का वह झूँटा भाव बाधक नहीं होता। यह दिखलाने के स्थान में कि उसकी भूलें बहुत भयङ्कर हैं और तुम कभी भी ऐसी भूल नहीं करते तुम यदि उससे कहो इस तरह की भूलें मुझ से भी कभी कभी हुई हैं परन्तु उसका परिणाम मेरे लिये सदैव दुखद ही हुआ है। यद्यपि कभी-कभी ऐसी ग़लतियाँ होना मनुष्य से अस्वभाविक नहीं है परन्तु मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि सतर्क रहने से ऐसी भूलों और उसके दुखद परिणाम से बचा जा सकता है।"

अथवा "मैं आपकी भावनाओं को अनुभव करता हूं। मैं भी जब युवक था, तब इसी प्रकार सोचता था परन्तु बाद के अनुभव ने मुझे सिखा दिया कि यह हमारे हित में नहीं है। क्या तुम इस बात को इस दृष्टिकोण से देखना पसन्द नहीं करोगे................" मुझे निश्चय है कि तुम इस तरह उनके प्रथम प्रतिरोध को जीत लोगे।

इसलिये मनुष्यों को बदलने का तीसरा नियम है अगर तुम्हें अपनी कोई ग़लती मालूम हो तो उसे तुरन्त स्वीकार कर लो और उसे यह समझते हो कि तुम अपनी ग़लतियाँ स्वीकार करने में झिझकते नहीं हो और यदि तुम सही हो तो उसे यह अनुभव करने दो कि इस तरह की भूल स्वीकार करना उसकी आत्म-प्रतिष्ठा का बाधक नहीं है, इस तरह की भूलें दूसरों से भी हुई हैं और उसका अब कर्त्तव्य यही है कि वह इस भूल में संशोधन करे और भविष्य के लिये सचेत रहे।"

तुम्हारा पिता।

———

अपने विचारों को दूसरे की सम्पत्ति बनाओ

(२८)

प्यारे बेटे,

तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि हमारे बाड़े में जो थोड़ी सी फालतू जगह पड़ी है, वहां हमने कई प्रकार की साग सब्जियां लगा रक्खी हैं। उसमें बैंगन हैं, टमाटर हैं भिंडी अरबी हैं, लौकी है, पोदीना है। विपिन बाबू की इस काम में आजकल काफी दिलचस्पी लेते हैं। मैंने एक दिन रात को देखा वह लालटेन लेकर क्यारियों को देख रहे हैं। जब क्यारियों में छोटी २ पत्तियां निकलने लगीं तो मानो उनका दिल नाचने लगा। पहले दिन हमारी इस 'बाग' में पैदा हुये टमाटरों की भाजी बनी तो हम सभी ने बड़ी दिलचस्पी से इसे खाया। क्यों? इस साग सब्जी से हमें इतनी दिलचस्पी क्यों है? इसलिए क्योंकि उन्हें हमने पैदा किया है।

तुम एक चित्र तय्यार करते हो, तुन्हें वह चित्र बहुत प्रिय है। क्यों? इसलिएं नहीं कि तुम उससे सुन्दर चित्र प्राप्त नहीं कर सकते बल्कि इसलिए क्योंकि तुमने उसे बनाया है। मनुष्य जिन चीजों को अपनी कहता है उससे उसे मुहब्बत होती हैं। यही बात विचारों के सम्बन्ध में भी सही है। प्रत्येक मनुष्य को अपने विचारों से मोह होता है। जिन सुझावों को वह अपना समझता है। उनकी

रक्षा और प्रसार के लिए वह त्याग और परिश्रम करने में भी प्रस्तुत रहता है।

क्या हम इस मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का उपभोग अपने व्यवहार में नहीं कर सकते। हम अपने विचारों की कड़वी दवा दूसरे के गले से इतारने की कोशिश करते हैं परन्तु यह सम्भव है कि हम अपने विचारों को दूसरे की सम्पत्ति वनाकर उन्हें प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण और रक्षा करने दें? कोई भी मनुष्य यह पसन्द नही करता कि दूसरे उसे सिखलावें वह स्वयं यह ग्रहण करना चाहता है। क्या हम जबर-दस्ती सिखलाने के प्रयत्न के स्थान में उसे स्वयं अपने आप सीखने में सहायता और प्रोत्साहन दे सकते हैं?

एक बड़े प्रसिद्ध दुकानदार ने मुझे यह एक बार बतलाया कि मनुष्य एक वस्तु को अपने को बेचा जाना पसन्द करने। वे यह नहीं पसन्द करते कि दुकानदार उनपर कोइ चीज बिना उनकी स्वयं की प्रेरणा के उन्हें भेज दे। वह स्वयं अपनी इच्छा से एक वस्तु को खरीदना चाहता है। ऐसी परिस्थिति में दुकानदार को क्या करना चाहिये? वह उस वस्तु को उनपर लादने का प्रयत्न करे अथवा वह इस बात का प्रयत्न करे कि खरीददार के मस्तिष्क में स्वयं उस चीज को खरीदके की प्रेरणा उत्पन्न हो।

एक डिजायन वनाने बाला फर्न एक कपड़े के मील के मालिक को अपने वनाये हुये डिजालन बेचना चाहती थी। उसके मैंनेजर ने दसियों का प्रयत्न किया पचासियों तरह के डिजायन उससे बनवाये पर यह मिल मालिक उसके हाथ में ही नहीं आता था। वह हर डिजायन में कोई न कोई गलती निकाल देता। मैंनेजर बड़ा परेशान था। आखिर उसने एक युक्ति निकाली वह एक बार दस पन्द्रह अपूर्ण डिजायन लेकर उसके पास पहुँचा और कहा मैं आपकी थोड़ी सहायता चाहता हूँ मैं कुछ

नये डिजायन बनवा रहा हूँ। आपको इस कार्य में काफी अनुभव और ज्ञान है। मैं चाहता हूँ कि आप मुझे कुछ परामर्श दें, जिससे आपके लिए उपयोगी बन सकें। उसने उन डिजायनों को रख जाने के लिए कहा और दूसरे दिन कुछ छोटे मोटे परिवर्त्तन करने का परामर्श दिया। मैंनेजर ने उन्हें खासी प्रकार पूरा करा दिया और यह डिजायन तुरन्त उस मिल मालिक द्वारा स्वीकार कर लिये गए। कारण मैंने अब समझा कि मैं क्यों वर्षों से इस खरीदार को कुछ बेचने में असमर्थ हुआ। वास्तव में बात यह थी कि मैं उस पर अब तक वह चीज लाद रहा था, जिसे मैं समझता था कि उसे खरीदना चाहिए। अब मैं इसका उल्टा करता हूं, अब मैं उसे अपना परामर्श देने को कहता हूँ। अतः उसे यह अनुभव होता है मानों यह डिजायन उसके परामर्श के ही परिणामस्वरूप हैं। अब मुझे उसे उन्हें बेचना नहीं पड़ता। वह अब स्वयम् खरीदता है।

यदि तुम दूसरे व्यक्तियों को बदलना चाहते हो तो उन्हें अपनी विचार धारा में सोचने के लिए प्रेरित करो। "अमुक बात तुम्हारे लिए सही है इसीलिए उसे करो" से काम नहीं चलेगा। उसे स्वयम् सोचने का अवसर दो कि वह स्वयम् इस परिणाम पर पहुँचे कि अमुक बात मेरे लिए सही है और उसे करना चाहिए। अमरीकाके प्रेसीडेन्ट थियोडर रुजबेल्ट ने एक बार इसका सफलता पूर्वक प्रयोग किया। उसके दल के नेता कुछ सुधारों के विरुद्ध थे, रुजबेल्ट उन्हीं सुधारों को जारी करना भी चाहता था और उन नेताओं से झगड़ा भी मोल लेना नहीं चाहता था। उसने उन्हें एक कर्मचारी की नियुक्ति के सम्बन्ध में बताया और उनका परामर्श पूछा? उन्होंने दल के एक ऐसे व्यक्ति का सुझाव पेश किया, जिसका दल में काफी प्रभाव था परन्तु जो इस काम के लिए

बिलकुल अयोग्य था। रुजवेल्ट ने उस व्यक्ति के अयोग्यता को अच्छी तरह बतलाते हुए कहा क्या इन परिस्थितियों में आप यह अनुभव नहीं करते कि उसकी नियुक्ति के काम को धक्का पहुँचेगा और उसका परिणाम दल की प्रतिष्ठा पर भी पड़ेगा और नाम सोचने को कहा। एक के बाद एक इस तरह कई नामों को उसने अनुपयुक्त करार दे दिया। अन्त में एक नाम ऐसा पेश किया गया जो रूजवेल्ट की सम्मति में बिल्कुल ठीक था। उसने कहा "आपका सुझाव बहुत ठीक और बुद्धिमत्तापूर्ण है, मैं इससे पूर्णतः सहमत हूं। यद्यपि यह सुझाव स्वयं रूजवेल्ट का था वह हृदय में इस नियुक्ति को पूर्णतः पसन्द करता था, परन्तु वह दल के नेताओं के मुख से उसको उपस्थित कराना चाहता था। उसने एक उपयुक्त व्यक्ति की नियुक्ति भी कर दी और दल के नेताओं को भी सन्तुष्ट कर दिया। इन्हीं दल के नेताओं से उसने आगे चल कर उन सुधारों का समर्थन कराया, जिसके पहिले वे विरोधी थे।

यदि किसी व्यक्ति को सिगरेट पीने की बुरी लत है तो तुम उसकी हालत को न तो एक व्याख्यान देकर ही छुटा सकते हो और न उसे यह अनुभव करा कर ही उस लत उसे मुक्त कर सकते हो कि तुम उसकी इस लत से उसे विमुक्त करने के लिए प्रयत्नशील हो क्योंकि इससे उस पर तुम्हारा महत्व स्थापित होता है और वह शरार बनता है, जिसे कोई भी मानसिक प्रवृत्ति स्वीकार नहीं करती। परन्तु यदि तुम उसमें यह भावना पैदा कर सको कि उसका स्वयम् का यह विचार है और वह स्वयम् इसमें प्रयत्नशील है तो वह उस लत से विमुक्त हो जायगा।

यदि तुम किसी भी कार्य में भड़ेनू लोगों से ही काम नहीं लेना चाहते हो तो उन्हें अनुभव करने दो कि उस कार्य की योजना की उत्पत्ति में उनके मस्तिष्क का उतना ही भाग है जितना तुम्हारा। मैं एक बार कम्पनी के कर्मचारियों

से परेशान हो गया, मुझे पद पद पर अनुभव होता था मानो उस संगठन में कोई प्रेरणा शक्ति नहीं है, कोई अपने काम में जिम्मेदारी महसूस नहीं करता था और न उन्हें अपने काम में कोई दिलचस्पी थी। जुर्माना और डांट डांट से मामला और बिगड़ता ही जाता था। मैंने प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष को कार्य को सुचारुरूप से चलाने के लिए एक योजना बनाने के लिए कहा और फिर एक से उनकी योजनाओं पर बैठ कर बात चीत की। मैं उन्हें धीरे २ उन्हीं परिणाम पर ले आया, जिन पर मैं स्वयं ही पहुँच चुका था परन्तु मुझे विश्वास है कि यदि वही बातें आज्ञा की तरह जारी कर दी जातीं तो वह कार्यकर्त्ताओं में जीवन और उत्साह पैदा नहीं कर सकती थीं परन्तु अब यह सुझाव स्वयं उन्होंने ही पेश किए थे।

गत महायुद्ध (१६१४–१८) के काल में वुडरो विल्सन अमरीका के प्रेसीडेण्ट थे। विश्व में शांति स्थापित करने के लिए उनके द्वारा उपस्थित चौदह सिद्धांत इतिहास में अमर रहेंगे। उनके एक मित्र थे कर्नल एडवर्ड एम। हाऊस, जिनका उन पर बहुत प्रभाव था। वे उनके परामर्शों को अपने मन्त्रिमडल के परामर्शों से भी अधिक महत्व देते थे। श्री हाउस ने आर्थर डी हाउडन स्मिथ नामक व्यक्ति को अपने इस प्रभाव का रहस्य एक बार प्रकट कर दिया—इस मिस्टर स्मिथ ने "The Saturday Evening Post—नामक पत्र में एक लेख प्रकाशित कराया जिससे हाउस की इस वार्तालाप का उल्लेख करते हुए मि० स्मिथ ने लिखा था कि हाऊस ने उनसे कहा मैं प्रेसीडेण्ट को जब समझ गया तो मैंने उसे एक विचार में परिवर्तित करने का सबसे अच्छा तरीका यह सीख लिया कि मुझे जब उसे किसी विचार में परिवर्तित करना होता तो मैं समय २ पर उस विचार को प्रेसीडेण्ट के सामने इस तरह रखता जिससे उस ओर

उसकी दिलचस्पी बढ़े और वह स्वयं उस पर अपने तरीके से सोचने लगता। पहिली बार इसका प्रयोग अपने आप एक संयोग से होगया। मैं उनके पास श्वेतगृह में उससे भेट करने जाता रहा और एक कार्य के सम्बन्ध में सुझाव रखता रहा जिससे वह सहमत नही था परन्तु एक दिन मुझे भोजन की मेज पर यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि प्रेसीडेन्ट मेरे सुझाव को अपना सुझाव कह कर पेश कर रहा था। क्या हाउस ने उसको रोककर कहा 'यह विचार तुम्हारा नहीं मेरा है" कभी नहीं ? वह मनोविज्ञान से पूरी तरह परिचित था। वह सुझाव का श्रेय प्राप्त करने का इतना इच्छुक नहीं था, जितना कि वह उस विचार को कार्यरूप में देखने के लिए इच्छुक था।

यदि तुम अपने विचारों को स्वीकार कराना चाहते हो तो धीरे धीरे उसके बीज बोओ और तुम देखोगे कि जिन लोगों से तुम अपने विचारों और सुझावों को स्वीकृति कराना चाहते हो, वह उसको उपस्थित करते हुए दिखलाई देंगे। तुम जो विचार उपस्थित करते हो दूसरों के सुसुप्त मस्तिष्क उनको पकड़ लेते हैं और समय पाकर तुम उन विचारों को उनके ही द्वारा उपस्थित करा सकते हो। उस समय तुम देखोगे कि उस उन विचारों के लिए लड़ने वाले तुम्हारी तरह अनेक योधा तुम्हारे साथ हैं। उम्हें उन्हें ठोक पीट कर 'वैद्यराज' बनाने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

मनुष्यों के विचारों को बदलने का चौथा नियम है अपने विचारों को दूसरों की सम्पति बनाओ।

तुम्हारा पिता।

————

तर्क करने की एक विशेष पद्धति

(२६)

प्यारे बेटे !

मैं आज तुम्हें एक ऐसे विषय पर कुछ पंक्तियाँ लिखना चाहता हूं, जो अनेक युवकों के जीवन में असफलता का एक विशेष कारण बन जाता है। क्या तुमने कभी इस बात की चेष्टा की है कि तुम इस बात का अन्वेषण करो कि तुम्हारी तर्क करने की पद्धति ऐसी तो नहीं है जो दूसरे लोगों को अप्रिय मालूम होता हो—तुम अपनी तर्क पद्धति से अपने मित्रों को दुश्मन न बनकर दुश्मनों को भी मित्र बना लेते हो या नहीं।

हम यदि ध्यान से देखें तो हमारा सारा जीवन तर्क करते-करते ही व्यतीत होता है। संसार में हम जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं उन्हें हम अपने विचार के अनुकूल करने का प्रयत्न करते हैं। अनुकूल विचार भी एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के समीप लाता है। हम संसार को जिस दृष्टिकोण से देख रहे हैं, चाहते हैं कि अन्य भी उसे उसी दृष्टिकोण से देखें।

तुमने सुकरात के सम्बन्ध में तो बहुत कुछ पढ़ा और सुना होगा। सुकरात का सारा जीवन ही तर्क में बीता।

सुकरात को यद्यपि प्राण दण्ड हुआ परन्तु वह ज्ञान का एक

ऐसा सतत प्रभाव छोड़ गया, जिससे मानव-विचारों में एक क्रान्ति ही पैदा हो गई। उसके जीवित रहते ही हज़ारों मनुष्यों ने अनुभव किया मानों उसने उनकी आँखे खोल दी हों। उसका जीवन ही तर्क और विवाद में व्यतीत हुआ परन्तु उसके तर्क करने की पद्धति क्या थी? क्या वह लोगों से कहता था कि तुम ग़लती पर हो, तुम्हारे विचार भ्रमात्मक हैं, तुम गुमराह हो—मैं जो कुछ कहता हूं—वही सत्य है, मैं ही वस्तु-स्थिति को जानता हूँ। कभी नहीं, वह तो केवल लोगों को यह कहता था कि "सत्य की खोज करो, आँख खोलकर अपने पथ को टटोलो।" वह एक के बाद दूसरे ऐसे प्रश्न करता, जिसका उत्तर 'हाँ' में ही हो सकता और इस तरह अपने तर्क को वैज्ञानिक रूप से इस तरह विकसित करता कि अन्त में प्रतिपक्षी 'हां' 'हां' करते करते अपने को अन्तिम 'हाँ' की स्थिति में ही पाता।

इस तरह हमको तर्क और वादविवाद की एक विशेष पद्धति का विकास करना चाहिये। प्रतिपक्षी अपने गढ़ में बैठा हुआ है, वह आप से अपने को हीन प्रमाणित नहीं करना चाहता, उसे अपनी विचारधारा पर एक स्वभाविक मोह है। वह अपने स्थान से विचलित नहीं होना चाहता। उसके गढ़ की अज्ञान की दीवारें किस तरह तोड़ी जा सकती हैं? यदि तुम उसके गढ़ पर एकदम धावा बोल दो तो वह अन्धा होकर उसकी दीवारों की रक्षा करने की चेष्टा करेगा। यदि तुम अपने तर्क को इस तरह प्रारम्भ करो जो उसके लिये प्रारम्भ में ही अग्राह्य है और वह उसे अस्वीकार करे तो वह अपनी गढ़ी दीवारों को और भी सजग होकर रक्षा करने का प्रयत्न करता है। यदि तुम्हारे तर्क के उत्तर में वह एकबार न कह दे, तो सम्भावनां यह है कि उसके बाद भी जो प्रश्न होंगे, वह 'न' कहेगा और अन्त में 'न' ही रह जायगी।

प्रोफेसर ओवर स्ट्रीट अपनी पुस्तक "मनुष्यीय व्यवहार पर प्रभाव" नामक पुस्तक में लिखते हैं कि नकारात्मक अन्तर एक ऐसी बाधा है, जिसको पार करना अत्यन्त कठिन है। एकबार जब एक व्यक्ति ने कह दिया है तो उसके व्यक्तिगत स्वाभिमान का तकाज़ा है कि वह उस पर आरूढ़ रहे। वह आगे जाकर सम्भव है यह भी अनुभव करे कि 'न' कहना उचित नहीं था परन्तु मूल्यवान अहभाव का विचार वहां है। इसलिये एकवार एक चीज कहने के बाद उसे उस पर अड़े रहना चाहिये। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम एक व्यक्ति को स्वीकारात्मक मार्ग पर चलावें।

एक चतुर व्यक्ति प्रारम्भ में एक प्रश्नावाले के उत्तर में 'हां' 'हां' कहला कर सारी विचार धारा को मनोवैज्ञानिक रूप में स्वीकारात्मक मार्ग पर प्रवाहित कर देता हैं। एकबार जब तुम एक विशिष्ट दिशा में एक गेंद को लुढ़का देते हो तब उसको उस दिशा से बदलने में विशेष शक्ति का प्रयोग करने का प्रयत्न करना पड़ता है और उसके विपरीत दिशा में उसे लौटाने में अधिक प्रयत्न की आवश्यकता पड़ती है। एकबार जब एक व्यक्ति 'न' कह देता है तो उसके सारे स्नायु तन्तु एक विशेष प्रकार से सगठित हो जाते हैं और उससे फिर 'हाँ' कहलाने में उसके सारे स्नायु-तन्तों का विरोध तुम्हें सहन करना पड़ता है।

यह पद्धति बहुत सरल है। सब से पूर्व उस बात से प्रारम्भ करो, जिसे वह ध्रुव सत्य समझता है और तुम भी उससे सहमत है। प्रत्येक तर्क और बहस में कुछ न कुछ ऐसी बातें होती हैं, जिन्हें दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं। पहिले मतभेद वाली बातों का जिक्र न करके उन बातों को लेना चाहिये, जिन्हें प्रतिपक्षी स्वीकार करता है। प्रतिपक्षी के सामने वह अपनी बुद्धिमता की डींग ही हांको

और न यह ही कहो कि केवल तुम्हीं जो कहते हो वह सत्य हो सकता है। उससे मित्रता-पूर्ण वातावरण में बात प्रारम्भ करो और इस तरह बात कहो मानो तुम्हें अपनी बात का आग्रह नहीं है, तुम केवल सत्य पर पहुंचना चाहते हो। प्रतिपक्षी के तर्क का जो सत्य पन। है. उससे प्रारम्भ करो और उसे प्रशंसात्मक ढंग से स्वीकार कर लो। इसके बाद उन बातों को क्रमशः लो, जिनके सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते अथवा, जिनके स्वीकार करने में प्रतिपक्षी को अधिक विरोध नहीं हो सकता। इसके बाद क्रमशः विवादग्रस्त बातें इस तरह हो कि जो बातों का उत्तर वह 'हाँ' में दे चुका है, उसका क्रमशः परिणाम में उत्तर 'हाँ' ही निकले। यदि वह अधिकांश बातों में 'हाँ' कह चुका है तो उसे अब 'न' कहने में विशेष प्रयत्न करना पड़ेगा।

प्रश्न करने का ढंग ऐसा होना चाहिये कि उसका उत्तर वह निकले जो तुम चाहते हो। यदि तुम चाहते हो कि एक व्यक्ति तुम्हारे साथ कहीं चले तो "क्या आप मेरे साथ चल सकेंगे?" यह पूँछने का सही ढङ्ग नहीं है। आप ऐसा पूँछ कर उसके सामने कितनी ही समस्याएँ रख देते हैं, उसे कई बातें सोचने की आवश्यकता होती है परन्तु यदि आप कहें "अमुक जगह चलना जरूरी है, आप चलोगे न? अथवा "आप कब चलोगे" की जगह यदि आप प्रातःकाल चलना चाहते हैं तो यह कहें "प्रातःकाल चलियेगा।" इसमें एक तो उसे यह नहीं सोचना पड़ता कब चला जाय, उसे वह समझ सुलझी हुई मिल जाती है और जब तक विशेष कोई रुकावट न हो स्वीकार कर लेता है, परन्तु यदि तुमने पूँछा "आप कब चलेंगे?" और उसने कह दिया "सायङ्काल को" तो उसे फिर "प्रातःकाल" चलने के लिये राजी करने में तुम्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा।

यदि तुम एक व्यक्ति की विचार धारा को एक विशेष दिशा की प्रवाहित करना चाहते हो उसके मस्तिष्क के सामने उलझन वाली बात न रखकर उसे सुलझाकर रक्खो। प्रायः मनुष्य अपने मस्तिष्क से अधिक काम लेना नहीं चाहते, यदि एक समस्या के साथ तुम उसका हल भी सुझा दोगे तो अधिकतर सम्भावना यही है कि उस व्यक्ति का मस्तिष्क तुम्हारे हल को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेगा परन्तु यदि तुम उस व्यक्ति के मस्तिष्क पर ही उलझन को सुलझाने का भार सौंप दोगे तो प्रायः सम्भव है कि वह तुम्हारे विरुद्ध जाय और एक बार विरुद्ध जाने पर फिर उसे ठीक करना कठिन हो जायगा।

"हां हां" पद्धति का एक उदाहरण डेल कारनेगी ने अपनी पुस्तक में दिया है। एक सफल सेल्समैन का निम्न अनुभव था "मुझे जो क्षेत्र मिला हुआ था, उसमें एक व्यक्ति था, जिसे हमारी कम्पनी मोटर बेचने के लिए बहुत इच्छुक थी। उससे पूर्व मेरे स्थान पर जो व्यक्ति था उसने दस वर्ष तक असफलता पूर्वक उसके यहां टक्करें मारी परन्तु वह एक भी मोटर न बेच सका। मैं भी तीन वर्ष तक निरन्तर उसके यहां गया पर मुझे एक भी 'आफर' नही मिला। तेरह वर्ष के बराबर प्रयत्न के बाद, हमने कुछ मोटरें उसे बेचीं। अगर यह उसके लिए सन्तोषजनक हुईं तो मुझे कई सौ मोटरों के आर्डर मिलने की आशा थी।

ठीक ? मुझे यह पूर्ण विश्वास था कि यह मोटरें बिलकुल ठीक साबित होगी और इसलिए जब में उससे तीन सप्ताह बाद देखने गया तो मेरी आशायें बहुत ऊँची थी।

"परन्तु शीघ्र ही मेरी आशा निराशा में परिणित हो गई। वहां का चीफ इन्जीनियर मुझे मिला और उसने मेरे दिल पर पानी

फेरने वाली घोषणा मुझे सुनाई "ऐलीरुन मैं बाकी मोटरें तुम से नहीं खरीद सकता।

"क्यों" मैंने आश्चर्य से पूँछा क्यों ?

"क्योंकि तुम्हारी मोटरें बहुत गर्म होजाती हैं मैं अपना हाथ उनपर नहीं रख सकता।"

"मैंने समझ लिया कि इससे वहस करना व्यर्थ है। मैं इस तरह के प्रयोग बहुत दिनों तक कर चुका था। इस वक्त मैंने पद्धति का प्रयोग करना उचित समझा।"

"मैंने कहा सुनिये ! मिस्टर स्मिथ, मैं आपसे इस बात मे पूर्णतः सहमत हूँ कि यदि वे मोटरें बहुत गर्म हो जाती है तो तुम्हें एक भी और नहीं खरीदनी चाहिये। आपको तो ऐसी मोटरें खरीदनी चाहिये जो नेशनल इलेक्ट्रिकल मेन्यूफेक्चरर्स एसोसियेशन द्वारा नियत नियमों से अधिक गरम न होती हों। इससे तो आप सहमत हैं ?

"उसने कहा 'हां यह बिलकुल ठीक है" और मुझे उससे पहिली "हां" प्राप्त होगई।

इलेक्ट्रिकल मेन्यूफेक्चर्स एशोसियेशन के नियमों के अनुसार एक अच्छी मोटर का ताप कमरे के ताप से ७२ डिग्री फारनहाइट तक अधिक हो सकता है "हां" उसने स्वीकार किया "यह बिलकुल सही है परन्तु तुम्हारी मोटरें बहुत अधिक गरम होजाती हैं।

"मैंने उससे बहस नहीं की। केवल उससे पूंछा "मील के कमरे का ताप क्या है ?

"आह ! उसने कहा करीब ७५ डिग्री फरनहाइट।

"अच्छा ! यदि मील के कमरे का ताप ७५° है और यदि तुम ७२ उसमें जोड़ दो तो उसका जोड़ १४७° फाइरनहाइट हो

जायगा। यदि तुम १४७° ताप के गरम पानी के नीचे अपना हाथ रक्खो तो क्या वह नहीं जलेगा?"

और उसे कहना पड़ा 'हां'

"अच्छा तो मैंने कहा,, ती क्या यह सही नहीं होगा कि आप इन मोटरों से अपना हाथ दूर रक्खें? "उसने स्वीकार किया मैं देखता हूं तुम सही हो हम कुछ देर तक और बात करते रहे। इसके बाद उसने अपने सेक्रेटरी को बुलाया और आगामी महीने के लिए ३५ टायर के आर्डर दे दिये।

परन्तु यदि वह चीफ इन्जीनियर से बहस करता, उसे छूटते ही गलत बताता तब?

तुम्हारा पिता!

———

काम लेने की कला

(३०)

प्यारे बेटे,

आज जब मैं इन हजारों कैदियों को यहां काम करते हुए देखता हूँ तो मुझे अनुभव होता है मानो वे मंत्रवत् कार्य कररहे हैं, उस कार्य में उनका हृदय नहीं है। वे एक गर्दभराज की तरह केवल उस कार्य का भार वहन कर रहे हैं। जमादारों की डण्डे की मार ही उनके कार्य करने की प्रेरणा है। मैंने एक जमादार को बुरी तरह पीटने से रोका। उसने कहा "पंडित जी आप इन्हें नहीं समझते। यह इतने हरामजादे हैं कि अगर मार पीट न हो तो यह कुछ भी काम न करें। आज ही हम अगर यह मार पीट बंद करदें तो न कल से आपको पीने को पानी मिलेगा और न भोजन को आटा।"

यह जेल की ही बात नहीं है। आज मैं बाहर की दुनियां में भी यही देखता हूँ इस बड़ी जेल में भी अधिकांश व्यक्ति कैदी हैं और वे केवल कार्य का भार वहन करते हैं। उनके कार्य में जीवन नहीं है, प्रेरणा नहीं है, उनका हृदय नहीं है। दफ्तर में, कचहरी में, व्यौपारियों की दुकानों में हजारों लाखों आदमी काम कर रहे हैं उनके ऊपर परिस्थितियों ने जूआ डाल दिया है, वे तेली के बैल की तरह उसमें जुते हुये हैं, पर उसमें उनका हृदय नहीं है। संसार अनेक

प्रकार गुलामियों से मनुष्यों को छुड़ाने की बात कर रहा है पर दासत्व की इस शृङ्खला पर जो कि उसकी आत्मा को कुचल रही है कोई आघात नहीं करता।

मैं अनेक बार सोचता हूं, मनुष्य को जो काम मिला है, उसमें उसका हृदय क्यों नहीं है? वह आनन्द और मनोरंजन की तलाश में दुनियां भर में घूमता है पर उसका कार्य जो आनद का सतत् श्रोत हो सकता है वह उसके लिए मनोरञ्जन से शून्य हैं। यह क्यों है? इससे यह अनुभव होता है कि हमारे मगज में कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि Self expression आत्म-प्रदर्शन प्रत्येक मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रेरणा उत्पादक कार्यों में विकसित होती है। मनुष्यों की स्वाभाविक प्रेरणा उत्पादक कार्यों की ओर है और उनसे उसे एक प्रकार का आत्मिक सन्तोष मिलता है। एक चित्रकार को देखो जब वह अपनी कलात्मक प्रेरणा को चित्र में व्यक्त करता है और उसके फल स्वरूप जिस चित्र का वह उत्पादन करता है उससे उसे एक महान आत्मिक शान्ति मिलता है। इसी तरह एक बढ़ई को देखो, जब वह अपनी आन्तरिक प्रेरणा से एक सुन्दर और उपयोगी कुर्सी की लकड़ी छील छील कर बनाता है और जब वह उसके परिश्रम के प्रतिमूर्ति स्वरूप उसके सम्मुख आती है तो उसका दिल बाँसों उछलने लगता है। आज जितने भी आविष्कारक हुए हैं उन्होंने अपने महान् परिश्रम के स्वरूप जब अपने अविष्कार में सफलता मिली उस समय उन्हें जो आत्मिक-सुख मिला वह रुपए, पैसे अथवा यश की माप से नहीं आँके जा सकते।

खानों में कार्य करने के लिए सेफ्टी लैंप के आविष्कारक श्री डेवी जब अपना नया ईजाद किया हुआ लेम्प लेकर एक खान में उतरे

जहां भड़क उठने वाली गैस निकलती थी, तब उनका दिल धड़क रहा था सम्भवतः वहाँ मौत उनका स्वागत करने के लिए प्रस्तुत थी उन्होंने काँपते हुए हाथ से अपना लेम्प आगे बढ़ाया एक बार लौ कुछ बढ़ती हुई दिखाई दी परन्तु फिर वह पूर्ववत् होकर जलती वे अपने आविष्कार में सफल हुए। उन्हें उससे जो सुख का अनुभव हुआ। क्या वह दुनिया की किसी भी वाह्य वस्तु के प्राप्त करने पर मिल सकता था? न्यूटन ने जब सोचते सोचते पहली बार पृथ्वी के आकर्षण-शक्ति के रहस्य की खोज निकाली और स्टीफेन्सन के प्रयोगों के परिणाम स्वरूप जब पहिली रेलगाड़ी सड़क पर चलाई गई उस समय उससे अधिक दुनिया में सुखी व्यक्ति कौन था? किटहॉक नामक एकान्त रेतीले मैदान में १६११ में जब राइट बन्धुओं ने अपने ग्लाइडर में आकाश में उड़कर मनुष्य के हजारों वर्ष के उड़ने के स्वप्न को सार्थक कर दिखाया तब मुश्किल से एकाध दर्जन व्यक्ति वहाँ मौजूद थे। राइट बन्धुओं की प्रथम उड़ान की खबर जिन रिपोर्टर ने योरोप के अपने अखबार को तार द्वारा भेजी थी उसे झूठा ठहरा कर अखबार के अधिकारियों ने उसका प्रकाशन कई महीनों के लिए स्थगित कर दिया परन्तु फिर भी जिस दिन राइट बन्धु अपनी ग्लाइडर से उड़कर जमीन पर उतरे उस दिन उन्हें जो आत्म-सुख मिला उसकी तुलना क्या ससार की किसी भी सम्पत्ति से की जा सकती थी।

यह बात नहीं है कि इन आविष्कारकर्ताओं को सदैव धन और यश प्राप्त हुआ है। अनेक बार तो कई आविष्कारकर्त्ताओं ने अपना सर्वस्व स्वाहा करके एक आविष्कार किया और इसके बाद उन्हें जनता का क्रोध भी सहना पड़ा। छापेखाने के आविष्कारकर्त्ता ने जब छापेखाने का आविष्कार किया तो लोगों ने उसे भूत प्रेत का काम समझा और उस पर चढ़ाई करके उसकी कला और कम्पोज

करने के इकों को तोड़ फोड़ कर नष्ट कर दिया। अनेक आविष्कार कर्त्ता, जिनके आविष्कार से फिर लोगों ने अतुल सम्पत्ति संग्रह की अपने जीवन काल में निर्धन ही रहे परन्तु तुम इससे यह न समझना, कि इन आविष्कारों को करके उन्हें पश्चाताप हुआ हो। नहीं! कभी नहीं उन्हें अपने यह कार्य अत्यन्त प्रिय थे और मरते दम तक इनमें लगे रहे। उन्हें धन या यश अपने जीवन काल में नही मिला परन्तु अपने कार्य में उन्होंने अपनी स्वाभाविक प्रेरणा को व्यक्त करके जो आत्म-सुख प्राप्त किया, वह धन और यश से कहीं अधिक मूल्यवान था।

एक कवि को देखो। एक कवि ने एक बार कहा था, 'मैं एक श्लोक लिखने के बाद ऐसा सुख अनुभव करता हूं मानो मेरे एक सन्तान हुई हो।' मैं उन कवियों और लेखकों की बात नहीं करता, ज़ो केवल पैसे के लिए ही लिखते हैं, ऐसे कवियों और लेखकों की कृतियां यदि तुम देखो तो तुम्हें अनुभव होगा कि एक उन्होंने एक सुन्दर भवन तो निर्माण किया है परन्तु उसमें आत्मा की कमी है, उसमें जीवन शक्ति नहीं है। शब्दों का बाह्याडम्बर तो बहुत है पर उसके पीछे लेखक और कवि की आत्मा नहीं बोल रही है. उसके पीछे उसकी आत्मिक प्रेरणा नहीं पैसे की प्रेरणा की छाया दिखाई पड़ती है। अनेक कवि धनाभाव की यन्त्रणा में पीड़ित रहे परन्तु उन्होंने जिस काव्य की रचना की उससे उन्होंने उस सुख को प्राप्त किया, जिसका माप हम संसार की किसी वस्तु से नहीं कर सकते। उसने अपनी काव्य रचना में अपने को व्यक्त कर दिया। मनुष्य की इस प्रवृत्ति के सामने सब वस्तुयें गौण हैं और वे इसे सन्तुष्ट करने में सफल हुए।

यदि हम चाहते हैं कि मनुष्य कार्य का केवल 'भार वहन' न करे तो हमें इस प्रवृत्ति के गूढ़ रहस्य का उद्घाटन करना

पड़ेगा। अगर तुम चाहते हो कि तुम जिनसे काम लेना चाहते हो वह केवल 'भाड़े के टट्टू' ही न रहें तो तुन्हें अपने कार्य लेने के तरीकों की सन्निकट परीक्षा करनी पड़ेगी। यदि तुम्हारा विचार है कि तुम्हारे काम लेने का सारा आधार केवल पैसा है यानी तुम अपने एक नौकर को तनख्वाह देते हो और केवल इसी आधार पर अपनी इच्छानुसार उससे मशीन की तरह काम लेना चाहते हो तब तो वे 'भाड़े के टट्टु हैं।' उन्होंने अपने शरीर को आपको भाड़े पर उठाया है और आप अपनी इच्छानुसार उनसे ले सकते हैं परन्तु वे 'भाड़े के टट्टू' ही हैं और तुम उनके शरीर से ही काम ले सकते हो, हृदय भाड़े पर नहीं दिया है, इसलिए उनका हृदय तुम्हारे काम में नहीं है। हृदय के बिना जिस तरह शरीर से काम हो सकता है, उसी तरह का काम तुम उनसे प्राप्त कर सकोगे।

प्रश्न यह है कि उस व्यक्ति के लिये उसका हृदय कैसे प्राप्त कर सकते हो। हृदय भाड़े पर उठाने की चीज नहीं है हृदय स्वाभाविक प्रेरणा ही से काम करता है। हम ऊपर बतला चुके हैं कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रेरणा उत्पादक कार्यों में अपने को व्यक्त करता है। मनुष्य को तुम यदि अपने को व्यक्त करने Self expression का अवसर दो, तो तुम उसकी प्रेरणा और हृदय को प्राप्त कर सकते हो।

तुम पूँछ सकते हो इसका क्रियात्मक रूप क्या है? तुम एक मनुष्य को जो काम सुपुर्द करो, उसमें अपने को व्यक्त करने का अवसर दो। उसमें यह अनुभव करने दो कि वह जो काम कर रहा है उसमें वह तुम्हारे आज्ञापालन की कठपुतली मात्र नहीं है वरन् वह ऐसा कार्य कर रहा है, जिसमें वह स्वयं अपनी उत्पादक शक्तियों को व्यक्त कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ कम या अधिक उत्पादक शक्ति होती है। यदि तुम एक

निकम्मे से निकम्मे व्यक्ति को भी लो और यदि ध्यानपूर्वक देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि उसमें कहीं न कहीं कार्य करने की प्रवृत्ति है और हम उस प्रवृत्ति का उचित उपयोग कर सकते हैं। तुम अगर सुस्त और काहिल व्यक्तियों को भी देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि उनमें किसी एक न एक में अपने को व्यक्त करने की आकांक्षा होती है। कुछ अपराधी—चोर, ठग, जालसाज—यदि तुम उनमें भी देखो तो तुम्हें मालूम होता कि कोई ऐसा गुण है जो समाज के लिए उत्पादक हो सकता है, कोई अच्छे गाने वाले होते हैं, कोई किसी एक तरह की चीज़ बनाने में होशियार होते हैं, और और नहीं तो कोई नकली सिक्के बनाने में ही निपुण होते हैं। पर ग़लती सिक्का भी तो बिना किसी कला के नहीं बन जाता। उसके लिए ठप्पा तय्यार करना पड़ता है, धातुओं का योग जानना पड़ता है। यह सब बिना किसी उत्पादक-शक्ति के नहीं हो सकता। हाँ! वह इस उत्पादक-शक्ति का दुरुपयोग अवश्य कर रहा है। परन्तु वह उस शक्ति से कुछ नहीं है, तुम चाहो तो उसकी उस शक्ति का उससे सदुपयोग करा सकते हो।

प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ उपयोगी काम कर सकता है, उसमें किसी न किसी ओर अपने को व्यक्त करने का एक गुण अवश्य होता है। यह दूसरी बात है कि यदि उसका उपयोग न किया जाय तो वह कुछ दिनों में कुण्ठित हो जाता है। यदि एक व्यक्ति को तुम उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के विरुद्ध कहीं दूसरी ओर लगा दो तो निःसन्देह यह उत्पादक-शक्ति कमज़ोर पड़ जायगी और वह उस कार्य में निकम्मा प्रमाणित होगा। महात्मा गाँधी काफ़ी सफल वकील नहीं बन सकते थे, यदि वह अपने वकालत के पेशे में ही लगे रहते और अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को दबा देते तो आज भारतवर्ष का इतिहास ही भिन्न होता। कालिदास आज विश्व

के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं परन्तु यदि उन्हें किसी सेना में युद्ध के सञ्चालन में ही अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता तब ? सर सी० वी० रमन और सर जगदीशचन्द्र बोस अच्छे वैज्ञानिक हैं परन्तु यदि उन्हें विज्ञान में अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास न मिल कर वे राजनीति में अपनी शक्तियां नष्ट करते तब ?

यदि तुम एक व्यक्ति की शक्तियों का उचित माप करो और उसकी प्रवृत्तियों का अध्ययन कर उसे उपयुक्त काम में लगा दो तो बहुत अधिक सम्भावना यही है कि वह उसमें सफल प्रमाणित होता है तो या तो तुम उसकी शक्तियों और प्रवृतियों का अन्दाज़ा नहीं लगा सके हो अथवा फिर कुछ परिस्थिति ही ऐसी उत्पन्न हो गई है जो मनुष्य के विचार से परे है।

छोटा हो या बड़ा प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ उत्तरदायित्व देने की अवश्यकता है। यदि वह इस दिए हुए उत्तरदायित्व का बार-बार दुरुपयोग करता है तो तुम्हें यह समझना चाहिए कि तुमने ग़लत आदमी ग़लत जगह पर रक्खा है। उस आदमी का अधिक उपयुक्त दूसरे स्थान पर उपयोग करो।

जिन व्यक्तियों से तुम काम लेना चाहते हो, उन्हें उत्तरदायित्व दो। अनेक मनुष्य जो साधारण तौर पर कार्य में कोई विशेषता नहीं दिखाते, किसी भी कार्य की ज़िम्मेदारी मिलने पर अधिक उपयोगी साबित होते हैं। इसलिए काम लेने का पहिला नियम है "उत्तरदायित्व डालो और उन्हें अपने को उस कार्य में व्यक्त करने का अवसर दो।"

बाबू प्रयागनारायण वकील आगरा के एक अच्छे वकील थे और व्यवसायी भी। यह प्राय: अपने आदमियों पर विश्वास करते और उन पर कार्य का उत्तरदायित्व छोड़ देते थे। एक बार मुझे इनकी बनारस की फेक्टरी में ठहरने का अवसर मिला। मैंने

बराबर इस बात को अनुभव किया कि वहां के मैनेजर बा० प्रेमचन्द अपने कार्य में इतनी दिलचस्पी लेते थे मानों उस फेक्टरी का एक एक पैसे की हानि उनकी हानि है और एक-एक पैसे का लाभ उनका लाभ है। इसमें संदेह नहीं इसका अधिकांश श्रेय बाबू प्रयागनारायण का कार्य लेने की शक्ति को भी था। तुम अपने नौकरों और सहयोगियों में यह भावना पैदा कर दो कि वे नौकर और मातहत से कुछ अधिक हैं तो तुम देखोगे कि वे अपने कार्य में शरीर के साथ अपने हृदय का भी उपयोग करते हैं। उनका काम 'भाड़े के टट्टू' से कुछ अधिक होता है।

अनुपयुक्त व्यक्तियों को बदलो

अनुभव से तुम्हें मालूम होगा कि कुछ कार्यों के लिए कुछ व्यक्ति अनुपयुक्त हैं। तुमने चुनाव करने में ग़लती की है। ऐसे व्यक्तियों को तुम्हें अधिक हानि होने से पूर्व ही उपयुक्त काम पर बदल देना चाहिए। उनकी भर्त्सना करने, उन्हें भला बुरा कहने से कोई लाभ नहीं है।

मनुष्य को चुनना, उनकी मानसिक और उत्पदक शक्तियों का ठीक-ठीक अन्दाज़ा लगाना और उन्हें उपयुक्त काम सुपुर्द करना एक बड़ा जटिल और महान कार्य है। नेतृत्व और महान कार्य करने के लिए इस ज्ञान सी अत्यन्त आवश्यकता है।

तुम्हारा पिता।

———

उपयुक्त वातावरण पैदा करो

(३१)

प्यारे बेटे,

आज जब मैं अपने गत जीवन पर एक दृष्टि डालता हूँ तो मैं एक अजीव पहेली में पड़ जाता हूँ। मुझे ऐसा मालूम होता है मानो मैं दुनियां को सबसे तेज दौड़ने वाली मेल ट्रेन में धड़ धड़ करता हुआ अपने जीवन की अन्तिम मंज़िल की ओर बढ़ता चला जा रहा हूँ। मुझे ऐसा मालूम होता है मानो चित्र पर के कुछ दृश्य मेरे सामने से जल्दी २ होकर निकलते चले जारहे हैं। मुझे वह लड़कपन के दिन कल की तरह याद हैं, जब मैं तुम्हारी तरह एक नव-वयस्क लड़का था और दुनियां को अपनी गर्दन उठाकर आश्चर्य से देख रहा था, मेरे हृदय में एक अजीव गुदगुदा थी, एक अजीव उमंगें भरी हुई थीं। दुनियां की बाबत मैं जो कुछ उस समय सोचता था, उसमें बहुत-सी बातें लड़कपन से भरी थीं, कुछ में एक अजीव सरलता अल्हढ़पन था और कुछ आज भी मुझपर कब्ज़ा किये बैठी हैं। आज में उनकी याद करके हँसता हूँ पर वास्तव में उनके लिए मेरे हृदय में एक कसक भी पैदा होती है। आज की गम्भीरता और चिन्तन मुझे सौ-सौ बिच्छुओं के डङ्क की तरह पीड़ित करता हैं। काश, में इन सब दिमाग़ी शान-शौकत से निकलकर उसे अपनी उसी

सरलता उसी अल्हड़पन से बदल पाता। जीवन को एक पहेली बनाने से लाभ क्या ?

मैंने तुम्हें अपने पूर्व-पत्र में बताया था कि प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई उत्पादक कार्य करने के लिए प्रेरणा और शक्ति होती है, उसको उचित कार्य में लगाकर उसे अपने को व्यक्त करने का अवसर देना चाहिये। आज मैं तुम्हें कुछ और आगे लेजाना चाहता हूँ और तुम्हें यह बताना चाहता हूँ तुम जो कार्य किसीके सुपुर्द करो उसके लिए ऐसा वातावरण बना दो कि वह उसके लिए भाररूप न हो कर उत्साह और स्फूर्ति का कारण बन जाय। वह उसका एक भाड़े के टट्टू की तरह भार वहन ही न करे अपितु उसे उसके करने में आनन्द प्राप्त हो। यह कैसे सम्भव है ?

जो काम तुम एक व्यक्ति से कराना चाहते हो उसमें उसके लिए प्रेरणा पैदा करो। यह बतलाने से कोई लाभ नहीं है कि तुम क्या चाहते हो ? अगर उसे एक काम को इसलिए करना है क्योंकि तुम उसे चाहते हो तो वह उसके लिए आनन्द का विषय नहीं है। कोई भी व्यक्ति दूसरों की इच्छाओं के लिए अपने को प्रेरित अनुभव नहीं करता। मानव समाज अभी इतना ऊँचा नहीं उठा है। "मानवीय व्यवहार पर प्रभाव" नामक एक पुस्तक में लिखा है "हमारी मूल आकांक्षाओं से ही हमारे कार्य की उत्पत्ति होती है और इसलिए व्यापार में, घर में, स्कूल में, राजनीति में पहली वस्तु यह है कि तुम उसमें एक तीव्र इच्छा पैदा करो। जो भी मनुष्य यह कर सकता है, सारा विश्व उसके साथ है। जो यह नहीं कर सकता, वह अपनी यात्रा निर्जन-पथ में करता है।"

यदि तुम अपने छोटे भाई से किसी बुरी आदत को छुटाना चाहते हो तो यह कहने से कोई लाभ नहीं है कि तुम उससे क्या चाहते हो, वह तो एक आज्ञा है और आज्ञा कभी किसी को अपील

नहीं करती परन्तु यदि तुम उसे यह बता सको कि उसकी यह आदत उसकी अमुक २ आकांक्षाओं के मार्ग में किस तरह बाधक है तो तुम उसमें उस आदत को दूर करने की इच्छा—प्रेरणा पैदा कर दोगे। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे साथी, तुम्हारे मातहत किसी कार्य विशेष को करे तो उसे उस कार्य के करने को कहने से पूर्व यह सोचो कि तुम उसे उस कार्य करने की प्रेरणा-इच्छा कैसे उत्पन्न कर सकते हो।

डेल कार्नेगी ने अपनी पुस्तक में अपना एक अनुभव लिखा है कि एक छोटे बालक का औसत बजन से कम था, वह भली प्रकार अपना भोजन नहीं करता था। उसे खूब डांट-डपट और ताड़ना की जाती और उससे कहा जाता "माताजी चाहती हैं तुम यह खाओ" पिताजी ने इसे खाने के लिए कहा है! पर क्या लड़के ने इन आज्ञाओं की ओर ध्यान दिया। नहीं। इस डांट-डपट के बीच में भोजन करने से उसकी रुचि और भी हटती जाती थी। पिता इससे चिन्तित था, वह सोचता था "मैं इसके शारीरिक विकास के लिए क्या करूँ?"

इस बालक को अपनी छोटी-सी तीन पहिये की ट्राइसिकिल पर चढ़ने का शौक था उसे अपनी ट्राइसिकिल को ले जाकर सामने के मैदान में चढ़ना बहुत अच्छा लगता था परन्तु वहां अक्सर एक 'शैतान' लड़का आजाता था, जो उससे धौल-धप्पड़ करके ट्राइसकिल छीन लेता और खुद चढ़ता। इससे इस बालक के हृदय में उस बड़े लड़के के प्रति क्रोध के भाव उत्पन्न होगये थे। यह बालक क्या चाहता था? उसकी तीव्र इच्छा थी कि वह इतना बलशाली हो जाय कि वह इस लड़के को अगर वह इसकी ट्राइसिकिल छीनने आवे तो मजा चखा सके। पिता ने उसकी इस इच्छा का उपयोग करने का निश्चय किया। उसने बालक से कहा "क्या तुम इतना बल प्राप्त

करना चाहते हो? तो तुम, तुम्हारी माताजी जो भोजन कहें उसे समय पर और भली प्रकार खाओ। उससे तुम अपने आप बलशाली बन जाओगे कि तुम उस बड़े लड़के को साइकिल छीनकर लेजाने से रोक सको।" यहां बालक के लिए एक प्रेरणा थी और पिता की समस्या हल होगई।

एक दूसरी बुरी आदत उस बालक में यह थी कि वह अपने बिस्तर में पेशाब कर लेता था। वह अपनी दादी के साथ सोता था और जब दादी सुबह उठती तो चादर भीगी मिलती तो वह बालक से कहती "मुन्ना! तुमने रात को फिर यह क्या किया?" तब वह उत्तर देता "नहीं" मैंने यह नहीं किया, तुमने यह किया है।' लड़के को डांट-डपट की जाती पर सब व्यर्थ! कल फिर यही होता। अन्त में माता-पिता ने कहा "हम इसकी यह आदत छुड़ाने के लिए क्या करें?"

उसकी दादी ने कहा "यदि तुम अपनी यह आदत छोड़ दो तो मैं तुम्हें एक नया पज़ामा सिलादूं।" बालक ने अपने लिये एक नया अलग पलंग खरीदने को कहा। दादी ने कोई एतराज नहीं किया। वे उसे एक दुकान पर ले गईं और दुकानदार से कहा— यह छोटे सज्जन हैं कुछ खरीद करेंगे और उसने दुकानदार को इशारे से एक छोटा पलंग दिखाने को कहा, जो दादी बच्चे के लिये खरीदना चाहती थी। दूकानदार ने पूँछा "श्रीमान्! क्या खरीदेंगे?" बालक का मस्तक स्वाभिमान से ऊँचा उठ गया। उसने कहा "मैं अपने लिये एक पलंग खरीदना चाहता हूं।" दूकानदार ने दादी का बतलाया हुआ पलग दिखाया और बालक को उसे खरीदने को राजी कर लिया।

दूसरे दिन दूकानदार ने यह पलग बालक के घर भेज दिया। शाम को उसके पिता जब घर आये तब वह दौड़ा दौड़ा गया और

उसने उसका हाथ पकड़ कर कहा "बाबूजी! चलो ऊपर, मेरा पलंग देखो! मैं अपने लिये एक पलंग ख़रीद कर लाया हूं।" पिता ने पलंग को देखकर उसकी बड़ी तारीफ़ की और कहा "अब तो इस पर पेशाब करके इसे खराब नहीं करोगे?" उसने कहा 'नहीं' और वास्तव में उसकी वह आदत छूट गई।

यद्यपि उमर पाकर बालक बड़े हो जाते हैं पर उनकी यह प्रकृति कुछ न कुछ बनी रहती है। तुम्हें उनसे काम लेने के लिये बालकों की तरह उनके मनोविज्ञान का अध्ययन करना चाहिये। नीतिकार का वचन है :—

यस्य यस्य हियो भावस्तेन तेन हितं नरम्।
अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवशं नयेत्॥

जिस किसी का जो गुण है उसी गुण से उस मनुष्य को [illegible] कर बुद्धिमान को अपने वश में कर लेना चाहिये क्योंकि पुरुष को बुद्धि ही का बल है।

तुम्हारे व्यौपार में यदि तुम्हारे कर्मचारी दिल नहीं लगाते तो इसके मतलब यह हैं कि तुम्हारी कार्य-प्रणाली में कहीं ग़लती है। तुम्हें इस बात से सावधान रहना चाहिये कि अगर तुम्हारे दुकान, दफ़्तर, कम्पनी, घर के किसी अङ्ग में सड़न है तो वह सड़न शीघ्र अन्य भागों में भी पहुँच जायगी। इसी तरह यदि तुम्हारे कुछ कर्मचारियों में ग़ैर ज़िम्मेदारी का भाव है तो वह शीघ्र ही अन्य दूसरे कर्मचारियों में भी फैल जायगा। इसलिये तुम्हें इसका इलाज़ समय रहते ही करना चाहिये।

तुम पूछ सकते हो अपने सहयोगियों, कर्मचारियों और कुटुम्बियों में ज़िम्मेदारी का भाव भरने के लिये तुम्हें क्या करना चाहिये। मैं तुम्हें नीचे कुछ मोटे-मोटे नियम लिखता हूँ :—

(१) प्रत्येक व्यक्ति को योग्यतानुसार कार्य दो। उसकी प्रवृत्तियों और शक्तियों का अध्ययन करो।

(२) जो कार्य किसी व्यक्ति के लिये नियत करो उसमें अपनी दृष्टि अवश्य रक्खो, पर पग-पग पर रोड़ा मत अटकाओ, उसे अपने पैरों पर आगे बढ़ने दो। उसे अपने को व्यक्त करने का अवसर दो।

(३ उसके पद को एक अच्छा नाम दो और यह देखो कि वह उसे आवश्यक सम्मान प्राप्त होता है।

(४) यदि वह ग़लती करता है, तो उसकी सीधी आलोचना मत करो। इस तरह प्रश्न पूछो, जिससे उसे अपनी ग़लती का अनुभव हो जाय।

(५) उसे प्रतियोगिता पर को रक्खो और अच्छा काम करने पर उसे सम्मानित और प्रोत्साहित करो।

(६) उसकी दिल-शिकनी मत करो। यदि उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम करना है तब भी वह इस तरह करो कि जिससे उसे यह प्रतीत हो कि तुम ऐसा काम और उसके हित से प्रेरित होकर ही ऐसा कर रहे हो।

(७ अपने विचार को उसकी सम्मति बना दो और उसे उन विचारों का विकास अपनी पद्धति पर करने दो !

अमरीका का प्रेसीडेन्ट विल्सन एक आदर्शवादी था। वह संसार में शान्ति स्थापना के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन करना चाहता था। योरोपीय महायुद्ध (सन् १९१४-१८) में भीषण रक्तपात हुआ उससे विश्व की आत्मा कांप चुकी थी। प्रेसीडेन्ट बिल्सन ने शान्ति स्थापना के लिये जो चौदह सिद्धान्त रक्खे, वह तुमने सुने होंगे। उनके परिणामस्वरूप राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई। पर क्या राष्ट्र-संघ को अपने कार्य में सफलता मिली। नहीं, और उसका एक कारण यह भी था कि आगे चलकर अमरीका ही उस योजना से तटस्थ हो गया। क्यों ? प्रेसीडेन्ट बिल्सन राष्ट्र-संघ की

स्थापना के विचार के भेद को केवल अपने दिमाग़ तक ही रखना चाहता था, पर वह पब्लिक पार्टी के अन्य सदस्यों के साथ उसके यश का बटवारा नहीं करना चाहता था और इससे वह उनसे अन्तर्राष्ट्रीय नीति पर उलझ पड़ा। परिणाम यह हुआ कि उनमें से अधिकांश उनके विरोधी हो गये और अमरीका अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से पृथक ही नहीं हुआ, प्रेसीडेन्ट बिल्सन का स्वास्थ्य और जीवन ही नष्ट हो गया।

यदि तुम जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहते हो तो इस बात का प्रयत्न करो कि तुम्हारे व्यौपार और गृह का ऐसा वातावरण हो जहां जो तुम चाहते हो उसे अन्य भार रूप से नहीं प्रसन्नता पूर्वक करें। तुम जो कार्य सुपुर्द करो, उनमें वे अपना दिल लगा सकें। यदि तुम एक कार्य ऐसा दे रहे हो जो उस व्यक्ति की रुचि और मान से निम्न श्रेणी का है तब भी तुम में यदि तनिक भी कल्पना-शक्ति है तो तुम उसकी बिना दिल-शिकनी किये, उससे वह काम करा सकते हो। तुम यदि यह कहो 'यह मेरी आज्ञा है और आज्ञा का पालन होना आवश्यक है' तो सम्भव है तुम उसे वह कार्य करने को मजबूर कर दोगे परन्तु वह कार्य उसके लिये प्रिय नहीं बन सकता। इसके विपरीत यदि तुम उससे यह कहो "मैं जानता हूं कार्य कठिन और तुम्हारी रुचि के प्रतिकूल है, सम्भव है तुम्हारे उच्च पद के अनुकूल भी न हो परन्तु तुम्हारे अतिरिक्त मैं अन्य किस पर इसे सफलता पूर्वक करने के लिये निर्भर हो सकता हूँ?" अनेक बार तुम्हारे सहयोगी और अधीन व्यक्ति अनुभव करेंगे कि तुम उनके स्वत्वों और उनके अधिकारों की रक्षा नहीं सकते और उन्हें जो मिलना चाहिये था, वह न देकर अन्याय कर रहे हो। ऐसी शिकायतों के विरुद्ध तुम्हें सजग रहना चाहिये और इन भावों को उनमें जमने नहीं देना चाहिये। इन विचारों से असन्तोष की उत्पत्ति होती है और वातावरण अप्रिय हो जाता है।

महायुद्ध के बाद प्रेसीडेन्ट विल्सन शान्ति-परिषद में अपने मित्र कर्नल हाउस को प्रतिनिधि बना कर शान्ति-परिषद में भेजना चाहता था परन्तु अमरीका का सेक्रेटरी आफ स्टेट श्री ब्रायन वहां जाने को बहुत इच्छुक था और बड़ी तैय्यारी कर रहा था। हाउस को ही यह काम सौंपा गया कि वह इसकी सूचना ब्रायन को इस तरह करे जिससे उसकी दिलशिकनी न हो। ब्रायन को यह सुनकर बड़ा खेद हुआ, परन्तु हाउस ने कहा "प्रेसीडेन्ट के विचार से किसी भी सरकारी पदाधिकारी को वहां नहीं जाना चाहिये क्योंकि उसके वहां जाने से वहां के लोगों का अनावश्यक ध्यान खिंच जायगा और आश्चर्य करेंगे कि वह वहां क्यों है आया?"

ब्रायन उस कार्य के लिये आवश्यकता से अधिक महत्वपूर्ण था। इससे वह सन्तुष्ट हो गया।

हमें कार्य की परिस्थितियां—वायुमंडल ऐसा बनाना चाहिये, जो कार्यकर्त्ताओं को स्फूर्ति-दायक हो। उपयुक्त कार्य मनुष्य के लिये सब से मनोरञ्जन का है!

तुम्हारा पिता।

— ——

प्रोत्साहन दो

(३२)

प्यारे बेटे,

मैं आज सोचता था कि मनुष्य में जो कुछ अच्छाई है-उसमें ईश्वर ने जो कुछ उत्पादन-शक्ति दी है, उसका हम उचित प्रयोग किस तरह करा सकते हैं ? मैंने किसी पत्र में सम्भवतः तुम्हें लिखा था कि अधिकांश मनुष्य केवल अपनी विचार-शक्ति का दस प्रतिशत का ही उपयोग कर पाते हैं। यही उनकी अन्य अन्य उत्पादक (Creative Power) के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। बहुत सी शक्ति व्यर्थ नष्ट हो जाती है बहुत सी शक्तिका विपरीत दिशा में प्रयोग किया जाता है और बहुत सी शक्तियों का कोई प्रयोग ही नहीं किया जाता। केवल दस प्रतिशत। तुम उस मनुष्य के लिए क्या कहोगे जो अपने सौ रुपयों से नब्बे रुपये तो इधर उधर फेंक देता है अथवा उनके एक बड़े भाग [illegible] कहीं रख कर ही भूल जाता है और केवल उसके दस प्रतिशत का ही उपयोग करता है।

आज भी संसार के अधिकांश निवासी आवश्यकताओं के पाट के नीचे पिस रहे हैं, आज उनकी साधारण-भोजन, वस्त्र, निवास की आवश्यकतायें भी पूरी नहीं होतीं। इस भूखी-नंगी और दुखी दुनियां के लिए हम क्या कर सकते हैं ? यदि हम इसकी ६० प्रतिशत दुरुपयोग

की नाो वाती अथवा सुप्त अवस्था में प ी हुई शक्ति का सदुपयोग करा सकें तो क्या हम दुनियाँ की हालत ही न बदल देंगे ?

हमारे सहयोगी और अधीन जो व्यक्ति हैं उनकी इस सुप्त शक्ति को किस तरह जागृत कर सकते हैं ? उनकी सञ्चालन शक्ति में किस तरह गति दे सकते है ?

तुमने देखा होगा कि जब मनुष्य ऐसी परिस्थिति में पड़ जाता है जहां उसके मान का प्रश्न होता है तो उसकी यह सुप्त शक्ति जागृत हो जाती है। कोई भी व्यक्ति दूसरों की तुलना में अपने को हीन प्रमाणित नहीं कराना चाहता। मनुष्य दूसरों की तुलना में अपने को श्रेष्ठ प्रदर्शन करने के लिए बड़े बड़े दुस्साहस के काम भी कर डालते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि प्रतियोगिता ही जीवन में कार्य करने की प्रेरणा को पैदा करती है। आज तुम जो यह अनेक उन्नति के काम देखते हो वह क्या राष्ट्रों और व्यक्तियों की प्रतियोगिता का कारण नहीं है। इसमें सन्देह नहीं संसार के के बड़े बड़े युद्ध राष्ट्रों की प्रतियोगिता के कारण हैं। परन्तु क्या दुनियाँ के अनेक आविष्कार भी इन्हीं उनके कारण ही नहीं मिले हैं इस विश्वयुद्ध में जर्मनी ने अनेक आविष्कार करके दुनियाँ को चकित कर दिया है, उसने नये-नये भीषण संहार के साधनों को ढूंढ निकाला है ? क्या तुमने कभी आकाश में होकर हज़ारों आदमियों, सामान, मशीनें, छतरियों की सहायता से आकाश में होकर सैकड़ों मील दूरियों पर उतरने की बात पहिले कभी सुनी थी ? जर्मनी ने इस युद्ध में यह सब कुछ करके दिखा दिया। मित्र शक्तियों ने पहले तो आश्चर्य से यह सब देखा परन्तु फिर वे भी अपनी शक्तियों को बढ़ाने में लग गए और आज चार-चार हजार "हवाई गढ़" बर्लिन पहुँचा कर उसकी जड़ों को हिला रहे हैं। यह तो प्रतियोगिता का एक बुरा पहलू है परन्तु हम प्रतियोगिता द्वारा मनुष्य की सुप्त

शक्तियों को जाग्रत कर उसे रचनात्मक कार्यों में भी लगा सकते हैं।

मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि प्रतियोगिता–अन्य लोगों में से आगे बढ़ जाने की इच्छा-मनुष्यों में स्वाभाविक रूप से पाई जाती है। भली या बुरी यहभावना मनुष्यों में है और साधारण मनुष्यों में यह कार्य करने की प्रेरणा का रूप धारण कर लेती है! फिर प्रश्न उठता है कि हम उनका उपयोग रचनात्मक रूप में क्यों न करें? अनेक प्रतियोगिताएँ तुम्हारे स्कूल में चलती थीं और उनमें से कुछ में सफलता प्राप्त करने के लिए तुम सिर तोड़ परिश्रम करते थे? क्यों? इसलिए ही नहीं क्योंकि प्रतियोगिता में विजयी होने पर तुम्हें कुछ पारितोषिक प्राप्त होता परन्तु इसलिये भी क्योंकि तुम्हारा स्वाभियान इस बात को ग़वारा नहीं करता था कि तुम अन्य आद-मियों से पिछड़े रहे।

मनुष्यों की उत्पादक शक्ति का अधिक से अधिक विकास करने के लिए इस प्रवृति का हम प्रयोग आगे के जीवन में भी कर सकते हैं। डेल कार्नेगी ने एक उदाहरण दिया है। चार्लस श्वास अमरीका के सबसे अधिक वेतन पाने वाले व्यक्ति थे, वे फोर्ड के विशाल कारखाने और व्यवसाय के जनरल मैनेजर थे। इनके यहाँ एक मैने-जर था, जिसके कारखाने में आदमी पूरा काम नहीं करते थे। झिड़-कियाँ, धमकी, जुर्माना सब व्यर्थ हुआ।

"क्या कारण है कि तुम जैसे योग्य व्यक्ति इस कारखाने से इतना उत्पादन नहीं कर सकता, जितना होना चाहिए?" श्वास ने कहा "मैं कुछ बनाने में असमर्थ हूँ" उसने उत्तर दिया मैंने हर तरह प्रयत्न कर लिया है, मैंने उन्हें आगे धकेलने का प्रयत्न किया है, मैंने उन्हें प्रोत्साहित किया है और मैंने गोली चलाने की धमकी दी है पर सब व्यर्थ! वे अपना काम नहीं करेंगे।

"मुझे एक खड़िया का टुकड़ा दो" श्याम ने कहा और उसने निकटतम एक व्यक्ति से पूछा, "तुम्हारे शिफ्ट ने आज कितने heats किए ?" उसने कहा "छः। उसने छः का चिन्ह जमीन पर खड़िया से लिखकर चला गया। जब दूसरे शिफ्ट पर काम करने वाले आये तो उन्होंने छः का अङ्क देखा और पूछा उसका तात्पर्य क्या है ? दिन वाले आदमियों ने जवाब दिया बड़े मैनेजर साहब आज आये थे, उन्होंने पूछा तुम्हारा शिफ्ट कितने heats करता है, हमने कहा छः। उसने वह जमीन पर लिख दिया।

दूसरे दिन श्याम फिर मिल में घूमने गया। रात के आदमियों ने छः का अक्षर मिटा कर सात का अक्षर लिख दिया था। दिन वाले आदमी जब आये और उन्होंने अपने ६ की जगह ७ का अङ्क लिखा हुआ पाया तो उन्होंने सोचा रात वाले उनसे बाजी मार ले गये उन्होंने अधिक परिश्रम किया और रात वालों के बढ़ जाने के उत्साह में उन्होंने दिल से काम किया और शाम को वे ७ को मिटा कर १० लिखने में समर्थ हुए। उस कारखाने का रोग दूर हो गया और वह कारखाना पूरा काम निकालने लगा।

जहां तुम यह देखो कि कार्य में शिथिलता आ रही है, वहाँ जो व्यक्ति उनके लिए जिम्मेदार हों उनके स्वाभिमान के भाव को जाग्रत करने की चेष्टा करो। तुमने चित्तौर की स्वतन्त्रता के लिए अपने जीवन की बाजी लगाने वाले राणा प्रताप का जीवन-चरित्र तो पढ़ा होगा। उन्होंने स्वतन्त्रता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट से लोहा लिया परन्तु असफलताओं ; जंगल के कष्टों और परिश्रम की यन्त्रणाओं ने उनमें थोड़ीसी शिथिलता उत्पन्न कर दी। उन्होंने अकबर को सन्धि पत्र लिखा, उस समय अकबर के दर्बार में जो क्षत्रिय राजा पृथ्वीसिंह थे उन्होंने एक उत्साहवर्धक पत्र लिखा। पत्र ने प्रताप के ठीक समय पर अन्तःस्तल

पर चोट की और फिर वह अपनी पूर्णशक्ति से अपने पर खड़ा हो गया। जब शिथिलता आ रही हो उस समय ठीक जगह पर स्पर्श मे जादू का सा असर होता है। वह अपने स्वाभिमान की रक्षा करना चाहता है और अपनी कमियों को भरसक दूर करने की चेष्टा करता है।

कार्य में शिथिलता लाने का इससे अधिक उपाय नहीं हो सकता कि तुम अच्छे और बुरे कार्य में मतभेद कर सको। जो परिश्रम और लगन से अच्छा काम करें, यदि उन्हें कोई प्रोत्साहन न मिले तो परिणाम यह होगा कि उनकी वह प्रवृति बहुत शीघ्र कुपित हो जायगी। जहाँ सब धान बाईस पसेरी तुलता हो वहाँ शीघ्र ही अधिकांश व्यक्ति निकम्मे हो जाते हैं। इसलिये व्यक्तियों की उत्पादक प्रवृतियों को उत्साहित करो। यदि तुम अपने निकम्मे से निकम्मे नौकर का कोई अच्छा काम देखो तो उसकी दिल खोलकर प्रशंसा करो और उसे उत्साहित करो। उसकी चिकित्सा समय-समय पर डांट डपट करने में नहीं है परन्तु यदि समय-समय पर जब वह अच्छा काम करे, उसकी प्रशंसा करो और उसे इनाम देकर उत्साहित करो तो तुम उसे शीघ्र एक अच्छे नौकर में तबदील कर सकते हो।

तुमको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अनेक मनुष्य, जिन्हें तुम आज अपने जीवन में सफल देखते हो वह अपने प्रारम्भिक जीवन में सफलता से कोसों दूर थे। एक चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट जो आज दो हज़ार रुपया मासिक कमाते हैं और हमारे एक मित्र हैं, मेट्रिक भी पास न कर पाए थे और कहीं मुनीम हो गये थे परन्तु एक उनके पुराने अध्यापक के उत्साहित करने पर इसी युवक ने फिर पढ़ना प्रारम्भ किया, विलायत गये और चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट होकर सफलता प्राप्त की। हमारे एक और मित्र बा० गुलराज गोपाल कुल

सब से प्रथम पन्द्रह रुपये की एक बहुत ही छोटी जगह पर नौकर हुए थे परन्तु प्रोत्साहन पाने पर इन्होंने इतनी सफलता से काम किया कि रिटायर होते समय यह बी. बी. एन्ड सी. आई. रेलवे के एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर थे। रायबहादुर मिट्ठनलालजी को तो तुम जानते हो ? और तुम्हें यह भी मालूम होगा कि यह रिटायर होने से पूर्व एक जैल के सुपरिण्टेन्डेन्ट थे परन्तु सम्भवतः तुम यह नहीं जानते होगे कि इन्होंने जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वे एक बहुत ही छोटी जगह पर नियत किये गये थे। पर मुझे मालूम है कि इनके जीवन में कोई न कोई ऐसा व्यक्ति हुआ है, जिसने इन्हें प्रोत्साहित करके इन्हें आगे बढ़ाया। यदि इन्हें यह प्रोत्साहन न मिला होता ? यदि समय-समय पर उनके अच्छे कार्यों के लिये उनका उत्साह न बढ़ाया जाता, उनकी प्रशंसा न की जाती, उन्हें तरक्की न दी जाती ? तब ? तब क्या वे अपनी जगहों पर इतने उपयोगी साबित हो पाते।

कविरत्न पं० सत्यनारायण ब्रजभाषा के बीसवीं शताब्दी के जब हिन्दी में खड़ी बोली का बोलबाला है सर्व श्रेष्ठ कवि हुए हैं। पं० सत्यनारायण जी ने अपनी जो कविता महात्मा गान्धी के स्वागत में पढ़कर सुनाई, उसकी बड़ी प्रशंसा हुई। कविरत्न जी को इससे बड़ा प्रोत्साहन और बल मिला। स्वयं महात्मा गान्धी को यदि गोखले का प्रोत्साहन न मिलता ? यदि महात्मा गान्धी पं० जवाहरलाल नेहरू को प्रोत्साहित न करते ? मैं बहुत से साधारण योग्यताओं के ऐसे व्यक्तियों को जानता हूँ, जो यदि समय पर प्रोत्साहित न किये जाते तो वह कुछ न हुए होते। परन्तु प्रोत्साहन और प्रशंसा ने उनकी उत्पादक शक्तियों को जागृत कर दिया, वे उनका पूरा उपयोग करने पर तुल गये और उन्होंने अपने को अधिक सफल बना लिया।

"तुम निकम्मे हो, तुम कभी कोई उपयोगी काम नहीं कर सकोगे,

तुम जीवन में सफल नहीं बन सकते" आदि वाक्यों से तुम एक व्यक्ति का सुधार नहीं कर सकते, इन बातों से तो उसका दिल और टूट जाता है परन्तु यदि तुम उसकी बुराइयों की ओर ध्यान न देकर अच्छाईयों की प्रशंसा करो, उसे उसके लिये उत्साहित करो तो तुम उसकी उचित दिशा में उत्पादक शक्तियों का भली प्रकार प्रयोग कर सकते हो।

हर वर्ष तुम सम्राट के जन्म दिवस पर नये रायबहादुर, खान बहादुर, रायसाहब की सूची देखते हो। राष्ट्रीय आन्दोलन के बाद इन खिताबों का अधिक मूल्य नहीं रह गया है पर आज भी सरकार हज़ारों और लाखों आदमियों का सहयोग इन्हीं खिताबों को देकर प्राप्त कर लेती है। इसके नीचे क्या प्रवृति छिपी हुई है? एक विशेष कार्य के लिय एक व्यक्ति को मान देकर प्रोत्साहित करना। नेपोलियन मनुष्य की इस प्रकृति को भलीभाँति जानता था, इसलिये उसकी सेना में जनरल, करनेल, कप्तानों की संख्या बहुत अधिक थी।

प्रशसा का जब दुरुपयोग किया जाता है तब हम उसे खुशामद कहते हैं। खुशामद बुरी चीज़ है क्योंकि हम एक व्यक्ति के अवगुणों को भी गुण बनाकर उसे अवगुणों की ओर प्रेरित करते हैं और उसे गिराते हैं परन्तु प्रशसा का सदुपयोग भी है, उसे हम प्रोत्साहन कह सकते हैं। यदि हम एक व्यक्ति के गुणों को स्वीकार करते हैं, यदि वह अपने को सुधारने का प्रयत्न करता है और हम उसके इस हरएक प्रयत्न की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं तो हम उसे अवगुणों को छोड़ने और गुणों के लिये प्रोत्साहित करते हैं। मानव कल्याण के लिये खुशामद विष है परन्तु उचित प्रोत्साहन अमृत है। ऐसे स्थितप्रज्ञ योगी संसार में बहुत कम मिलेंगे जो प्रशंसा, मान, अपमान में अपनी स्थिति में साम्य रख पाते हैं, हालांकि मनुष्य का आदर्श यही होना चाहिये।

कम से कम भारतवर्ष में तो ऐसे अनेक मनुष्य हैं जो सांसारिक सम्पत्ति की आसक्ति से तो मुक्त हो जाते हैं, रुपया, पैसा, मकान में उनको अधिक मोह नहीं रह जाता परन्तु यदि तुम इन्हें समीप से देखो तो तुम यश प्राप्त करने की एक प्रबल भूख इसमें भी देखोगे। छोटी अवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक यश की भूख पाई जाती है। मनुष्य में अच्छा कहलाने की प्रवृति ने मनुष्य को ऊँचा उठाने में बड़ा काम किया है। यदि यश की भावना न होती तो अनेक आविष्कारों, ज्ञान, अस्पताल, धर्मशालाओं, शिक्षालयों का अस्तित्व ही न हुआ होता। मैं कितने ही ऐसे व्यक्तियों को जानता हू जो राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हैं और उन्होंने राष्ट्र और समाज की अच्छी सेवा की है परन्तु प्रारम्भ में इन कार्यों में उनकी अधिक रुचि नहीं थी, वे संयोगवश किसी मीटिंग में पहुँच गये और वहाँ उन्हें सभापति या अन्य कोई सम्मान का पद दे दिया गया। इस समय वे इस सम्मान से उस ओर खिच गये और फिर उनके जीवन का प्रवाह ही बदल गया।

इसलिये यदि तुम चाहते हो कि एक मनुष्य अपनी उत्पादक शक्तियों का पूरी तरह उपयोग करे, यदि तुम उसके अच्छे गुणों का पूरी तरह विकास करना चाहते हो तो उसके अच्छे गुणों को स्वीकार करो और हर अच्छे कार्य तथा उसके लिये किये हुए प्रत्येक प्रयत्न की प्रशंसा करो और उसके लिये उसे पुरुषकृत करो।

तुम्हारा पिता।

———————

प्रत्येक मनुष्य को उपयुक्त कार्य दो

(३३)

प्यारे बेटे,

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का यह मत है कि प्रत्येक १०० व्यक्तियों में से स्मरण-शक्ति, विचार-शक्ति और सूझ की दृष्टि से ६८.२६ फी सदी व्यक्ति प्रायः समान होते हैं। यदि उन्हें उचित अवसर और उपयुक्त कार्य दिया जाय और सही मार्ग प्रदर्शन किया जाय तो उनका विकास समान रूप से होगा और वे समान रूप से उत्पादक कार्यों के लिए उपयोगी बना सकेंगे। बाकी ३२ फी सदी व्यक्तियों में से केवल १६ फी सदी ऐसे लोग हैं जिनके नेतृत्व करने और विशेषता प्राप्त के जन्म जात गुण होते हैं। केवल १६ फीसदी उनमें ऐसे हैं जो उत्पादक दृष्टि से साधारण सतह से जो निम्न श्रेणी के हैं इन १३ प्रतिशत मनुष्यों में भी यदि इनकी उचित मानसिक चिकित्सा की जाय और उन्हें उपयुक्त अवसर और काम दिया जाय तो उनमें से अधिकांश को साधारण सतह पर लाया जा सकता है।

इसका मतलब यह है कि १०० पीछे १४ तो ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने को उपयोगी साबित करने के लिए अवसर देख रहे हैं। तुम्हें यह जानकर कितना सन्तोष होगा कि तुम्हारे मित्रों, सहयोगियों, कुटुम्बियों और मातहत काम करने वाले कर्मचारियों, नौकर-चाकरों

में १०० में ८४ ऐसे व्यक्ति हैं जो जिनमें वे सभी गुण मौजूद हैं जो उन्हें समाज के लिए उपयोग बना सकते हैं यदि तुम्हारा चुनाव ठीक है तुम यह मानकर चल सकते हो कि तुम्हें जिन १०० व्यक्तियों का सहयोग मिला है उनमें से ८४ ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें तुम उपयोगी बना सकते हो।

परन्तु यह स्मरण रक्खो कि ६८·२६ प्रतिशत व्यक्तियों में सूझ, स्मरण शक्ति और विचार-शक्ति के विकास के लिए सुषुप्त समान शक्ति होते हुये भी उन्हें उनके विकास के लिए अलग २ कार्य और परिस्थितियों की आवश्यकता है। यदि तुम इन्हें अनुपयुक्त कार्य और परिस्थिति में रख दोगे तो सम्भव है उसम से बहुत से व्यक्तियों की यह शक्तियां उपयुक्त जलवायु और भोजन प्राप्त न होने के कारण कोमल अंकुर और पौधों की तरह निकलकर कुम्हला कर रह जाँय।

तुम्हीं सोचो यदि जगदीशचन्द्र बोस और सर सी० वी० रमन वैज्ञानिक न होकर राजनीति को अपनाते, महाकवि कालीदास को लेखनी पकड़ने की जगह तलवार पकड़ने का काम किया जाता, महर्षि व्यास दार्शनिक, विचारक और लेखक न होकर अपनी शक्तियों का उपयोग वाणिज्य व्यवसाय में करते तो आज क्या यह महापुरुष हुए होते ? यदि त्याग पूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू वकालत में अपनी प्रतिभा का उपभोग न करके मशीनों के आविष्कारक होते अथवा उन्हें किसी जलपोत का कप्तान बनाया जाता तब ? बनारस के बाबू भगवानदास एक अच्छे दार्शनिक और विद्वान हैं और इसलिए उनका अच्छा आदर है परन्तु जब २ उन्होंने राजनीति में प्रवेश करने का प्रयत्न किया तभी वे असफल हुए हैं। महात्मा गान्धी सत्य अन्वेषक हैं और इस नाते उनके सभी प्रयोगों का महत्व है परन्तु फिर भी वे जब कभी रोग और चिकित्सा के सम्बन्ध में हस्तक्षेप करते हैं तो उनके परिणाम एक अच्छे चिकित्सक के से नहीं हो सकते।

हम यदि महान पुरुषों के जीवन में देखें तो हम यह पायेंगे कि जहां उनमें से अनेक छोटी अवस्था में ही प्रारम्भ में ही उपयुक्त कार्य और परिस्थितियां मिलने के कारण सफल हुए, वहां अनेक महापुरुषों के जीवन में हम यह भी देखेंगे कि उन्हें प्रारम्भ में उपयुक्त कार्य और परिस्थितियां नहीं मिलीं और इसलिए वे प्रारम्भ में बिलकुल असफल रहे। उनका प्रारम्भिक जीवन कष्ट और असफलता की एक कहानी है, परन्तु जैसे ही उनको उपयुक्त कार्य और परिस्थितियां मिलीं वे चमक उठे। जगद्गुरु शङ्कराचार्य की मृत्यु ३० वर्ष की अवस्था में ही होगई। स्वामी रामीतर्थ भीअल्पायु में ही दिवंगत को प्रप्त हुए, अलक्षेन्द्रऔर नैपोलियन ने अपनी अल्पायु में बहुत बड़े २ काम किये, अमरीका में जिन दो रसायनिकों ने बड़ी खोज के बाद रसायनिक मिश्रण से कुनैन बनाने की क्रिया निकाली है वे अभी नवयुवक हैं, उनकी दोनों की अवस्था लगभग २७ वर्ष की है।

इसके विपरीत हम ऐसे भी उदाहरण पाते हैं कि अनेक महापुरुषों को जीवन के अन्तिम भाग में सफलता प्राप्त हुई। ड्यूक आफ वैलेंगटन अपने बचपन में सुस्त और शर्मीला, सादा और चिड़चिड़ा था, आगे चलकर राजनीति में वह कभी सफल नहीं हुआ परन्तु वह एक प्रतिभाशाली सैनिक था। उसका यह कथन "एक युद्ध का महान गुप्त रहस्य सैन्य-शक्ति की आवश्यकता के लिए रिजर्व रखना है" अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाता है। अर्ल किचनर और अर्ल हेग भी इसी प्रकार के सफल नाविक हुए हैं। श्री मेजिनी इटली का निर्माता और सफल राजनीतज्ञ था परन्तु वह सफल सैनिक नहीं था, सफल सैनिक तो उसे गेरीबाल्डी के रूप में मिलने वाला था। शैली को विद्यार्थी अवस्था में "पागल शैली' कहते थे। वह स्कूल में बिलकुल असफल रहा। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उसे निकाल दिया, माता-पिता ने भी उससे नाता तोड़ दिया परन्तु उसने जब कविता में प्रवेश किया तो उसे आशातीत सफलता मिली। शैली एक

महान कवि हुआ है। प्रसिद्ध नहरों के निर्माता जेम्स ब्रिन्डले को उस के अध्यापक श्री अब्राहम बेनेट लापर्वाह और सबसे निकम्मा विद्यार्थी समझते थे। ब्रिन्डले को अंग्रेजी भाषा और अङ्कगणित का बहुत ही प्रारम्भिक ज्ञान था, परन्तु मशीनों से वे इसी तरह खेलते थे जैसे बालक खिलोनों से खेलता है, मशीन के मामले में उनका मस्तिष्क बड़ा तेज चलता है।

तुम्हारे चाचाजी पढ़ने लिखने में बड़े सुस्त थे, पाठशाला से भाग जाते थे वे कोई खास इम्तहान पास नहीं कर सके परन्तु मशीन के सम्बन्ध में उनका मस्तिष्क अच्छा काम देता है, मैंने उन्हें उसी ओर की शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा की और मुझे आज प्रसन्नता है कि उन्होंने अपने कार्य में सफलता प्राप्त की है। आज वे मोटर और पैट्रोल का बड़ा व्यवसाय करते हैं और उनकी कई शाखाएँ हैं। उन्हें प्रारम्भ से ही ठीक काम मिल गया और उन्होंने अपने को जल्दी स्थापित कर लिया।

यदि तुम उपयुक्त व्यक्ति को उपयुक्त काम दे सको तो तुम न केवल अपनी और उसकी ही सेवा करोगे अपितु एक बड़ी सामाजिक सेवा भी करोगे। हजारों और लाखों आदमी प्रारम्भिक जीवन में असफल होने पर भी आगे चल कर उपयुक्त काम मिलने पर सफल हो गये और बड़े २ कार्य किए परन्तु यदि उन्हें वह कार्य न मिलता तो क्या वे समाज के लिये वे महान कार्य कर पाते? आज हजारों लाखों आदमी मृत्यु तक उपयुक्त कार्य और परिस्थितियों के न मिलने के कारण असफलता और कष्ट में ही मर जाते हैं परन्तु यदि उन्हें कोई खोजकर उपयुक्त कार्य दे सकता तो उनसे समाज का कितना कल्याण होता।

आज हजारों आदमियों का जीवन इसलिए दुःखमय है क्योंकि वे 'ग़लत' जगह पर रख दिये गये हैं। उपयुक्त काम न मिलने पर

आदमी में निराशा, सुस्ती और जीवनहीनता दृष्टिगोचर होती है, उनका स्वभाव चिड़चिड़ा और स्वास्थ्य रोगी होजाता है उनके सुधार का एक ही उपाय है कि उन्हें सही काम दिया जाय।

यहां मैं कुछ उदाहरण देता हूं एक युवक की अवस्था २६ वर्ष. विवाहित, एक बच्चे के बाप, बेकार केवल इतनी पूँजी बच रही थी कि आगामी मास का किराया चुकाया जा सके। बेकारी की वजह से बालक भी रोगी रहता था क्योंकि उसके मित्रों का अनुमान यह था कि यदि उसे रोज़गार मिल जाय और बालक को उचित भोजन तो उसका रोग दूर होजाय। इस व्यक्ति को ऊँची कालेज की शिक्षा मिली थी परन्तु उसने किसी कार्य में विशेषता प्राप्त नहीं की थी। वह आजकल की शिक्षा का 'शिकार' था। उसे अपने पिता का व्यवसाय पसन्द नहीं था और उसने उसमें शामिल होने से इन्कार कर दिया था। उसकी मां अभी मर चुकी थी और घरेलू अनेक झगड़े खड़े होगये थे। उसको पत्रों में लिखने का शौक था और उसमें 'पत्र-सम्पादन' की एक छिपी हुई पद्धति मौजूद थी। किसी तरह एक पत्र-कार्यालय में उसे अपने लिए उपयुक्त कार्य मिल गया। अब एक अच्छा सफल सहायक सम्पादक है और उसका परिवार सुखी है।

एक अन्य युवक अवस्था १६ वर्ष! स्कूल में अपने उत्पातों के लिए प्रसिद्ध! स्कूल के अनुशासन के प्रति उसने विद्रोह कर दिया, अपनी रक्षा का कार्य, खेल, अध्यापक, विद्यार्थी उसे सब व्यर्थ दिखलाई पड़ते थे। वह सबसे झगड़ता था। वह स्वतन्त्र होना चाहता था और रेडियों में काम करना चाहता था। उसने अभी अपनी मेट्रिक परीक्षा पास नहीं की थी और उसके कुटुम्बी अध्यापक सभी समझते थे कि वह अपने जीवन को नष्ट कर देगा। उसका मनोविज्ञान की दृष्टि से परीक्षण किया गया और उसके स्वास्थ्य और

मस्तिष्क की परीक्षा की गई उसमें विकार के कोई चिन्ह दिखाई नहीं पड़े, उसे संगीत का अध्ययन कराया गया और फिर वह रेडिओ में काम करने लगा। कहने की आवश्यकता नहीं है कि शीघ्र ही उसकी पहली शिकायतें दूर हो गईं।

एक मनुष्य की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे उपयुक्त कार्य मिले। उपयुक्त कार्य मे यदि उसकी शक्तियाँ लगती हैं तो इसमें सन्देह नहीं है कि उसकी सफलता की सम्भावनाएँ कहीं अधिक बढ़ जाती हैं।

तुम्हारा पिता।

प्रियम्बदा प्रिंटिङ्ग प्रेस, नौबस्ता, आगरा।